बलिदान

[चन्द्रशेखर आज़ाद की रोमांचकारी जीवनी]

लेखक
नन्दकिशोर निगम

मूल्य : चार रुपये

मुद्रक : नया हिन्दुस्तान प्रेस, चांदनी चौक, दिल्ली-६

समर्पण

देश को स्वतन्त्र हुए २१ वर्ष से अधिक बीत चुके है। परन्तु क्या यही स्वतन्त्रता थी जिसका देशवासी स्वप्न देखा करते थे, जिसके लिए सैकडो युवको और युवतियो ने अपना बलिदान दिया था, हजारो देशवासियो ने अनेक कष्ट झेले थे, जेलो मे सडे थे ? क्या यही स्वतन्त्रता थी जिसको महात्मा गाधी ने अपना लक्ष्य बनाया था या जिसको स्वाधीनता से पहले कांग्रेस ने कितने ही प्रस्तावो द्वारा अपना ध्येय निश्चित किया था और डके की चोट पर ऐलान किया था ?

इन २१ वर्षो मे निश्चय ही कुछ लखपती करोडपति हो गये, कुछ हजार-पती लखपती हो गये। परन्तु क्या यह सत्य नही है कि लाखो जन अधिक गरीब हो गये ? आज उनके खाने को अनाज नही है, पहनने को वस्त्र नही हैं, सोने के लिये सडको के फुटपाथो के अतिरिक्त और कोई सुरक्षित स्थान नही है। रोगियो के लिए इलाज का पर्याप्त प्रबन्ध नही है। बेरोजगारी का बाजार बढता ही जा रहा है।

प्रत्यक्ष है कि स्वतन्त्रता आई परन्तु वह स्वतन्त्रता नही जिसके लिये हम लोगो ने युद्ध किया था, फासियो पर लटके थे, जेलो मे तथा अण्डमान की काल कोठरियो मे बेडियो सहित कष्ट सहे थे। हमारा तो लक्ष्य था जनतन्त्र समाजवाद। वह तो अभी भी कोसो दूर है। इस प्रकार स्वतन्त्रता का युद्ध समाप्त नही हुआ है और यह युद्ध तब तक चलाना होगा जब तक पूर्णतया जनतन्त्र समाजवाद देश मे स्थापित न हो जाय।

चन्द्रशेखर आजाद ने इसी लक्ष्य को लेकर अपना जीवन बलिवेदी पर न्योछावर कर दिया था। इन हजारो लाखो बलिदानो को यदि व्यर्थ ही जाने

दिया तो उसकी जिम्मेदारी आजकल के युवक-युवतियो पर होगी और आगे आने वाली पीढी उनको कभी क्षमा नही करेगी ।

परन्तु मैं युवक-युवतियो को अच्छी प्रकार समझता हू । ठीक है आज उनके सन्मुख सही पथ-प्रदर्शक नही है । हम तो सभी अब वृद्ध हो चुके हैं और अपने जीवन की अन्तिम सीढी पर बैठे पल और घडी गिन रहे हैं । परन्तु इस पुस्तक द्वारा मैं उनके सामने एक जीवनी रख रहा हू जो शायद उनका कुछ अशो मे पथ-प्रदर्शन कर सके । इसीलिये मैं यह पुस्तक आज के और आने वाले युवक और युवतियो को समर्पित कर रहा हू ।

—एन० के० निगम

लेखक की ओर से

मेरा जन्म ८ दिसम्बर, १९०६ मे दिल्ली मे हुआ था । जब मैं दो वर्ष का था, पिता का निधन हो गया था। माता भी मुझे ११ वर्ष की आयु के लगभग निस्सहाय छोडकर स्वर्गवास हो गई थी । परन्तु मरने से पहले मेरी माता ने मेरे जीवन को कुछ उसूलो पर ढाल दिया था। इन्ही उसूलो के कारण और कुछ अपनी बडी बहन की सहायता से, कुछ स्कूल और कालेज के शिक्षको की मदद से और कुछ स्वय ट्यूशनें करके मैंने अपनी शिक्षा जारी रखी।

१९१९ मे महात्मा गाधी का स्वाधीनता आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। शायद ही कोई युवक होगा जो उस आन्दोलन से प्रभावित न हुआ हो। मेरे जीवन पर तो उसकी गहरी छाप पडी। परिणामत उस समय के स्काउटो मे मैंने कम-से-कम तीन बार सही रास्ते पर लाने मे सफल काम किया।

कालेज मे आकर भी मैंने राजनैतिक क्षेत्र मे अपना काम जारी रखा। उस समय के जलूसो की कई बार अगुवाई भी की। दिल्ली मे साइमन कमीशन के विरोध मे भी मेरा थोडा-सा हाथ था।

सस्कृत स्कूल के हेडमास्टर—मास्टर अजमतसिंह के कहने पर मैंने राजनैतिक कार्य-क्षेत्र को छोड दिया और यमुना के किनारे अपनी एम० ए० की परीक्षा की तैयारी करने लगा। परन्तु वही मेरा क्रान्तिकारियो से सम्बन्ध जुडा। एम० ए० पास कर मैं हिन्दू कालेज मे अध्यापक नियुक्त हो गया। होस्टल का सुपरिंटेण्डेण्ट भी नियुक्त हुआ। वहा मेरे साथ पहले तो कैलाशपति रहता रहा परन्तु २२ दिसम्बर, १९२९ से चन्द्रशेखर आजाद मेरे पास रहने लगे। यहा जो क्रान्तिकारी मेरे कमरे मे आये और जिनसे मेरा घनिष्ट सम्बन्ध हो गया उनमे से कुछ थे: चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल,

कैलाशपति, भवानीसिंह, काशीराम, भवानीसहाय, विमलप्रसाद जैन, वैशम्पायन, धनवन्तरी आदि।

२२ मार्च, १६३० को रोगी होने के कारण मैं अपनी बहन के घर आ गया। यहा भी सभी ऊपर वर्णित क्रान्तिकारी मुझसे मिलते रहे। कुछ समय पश्चात्, भाभी (दुर्गादेवी वोहरा) और दीदी (सुशीला मोहन) से भी सम्पर्क मे आ गया।

सितम्बर १६३० मे मैं सुशीला दीदी के साथ पण्डित जी से कानपुर मे मिला और उनकी आज्ञानुसार उसी महीने के अन्त से भाभी तथा दीदी को अपने साथ दिल्ली लाकर दिल्ली के क्षेत्र का भार सभाल लिया।

कैलाशपति २८ अक्तूबर, १६३० को पकडा गया। दूसरे ही दिन से उसने बयान देना प्रारम्भ कर दिया। आजाद की आज्ञानुसार मैंने दिल्ली छोड दी। भाभी तथा दीदी तो लाहौर चली गई और मैं कानपुर, जहा मैं आजाद के साथ ही रहने लगा। वैशम्पायन भी हमारे साथ रहता था।

४ दिसम्बर को मैं कानपुर गया प्रसाद पुस्तकालय मे पकडा गया। एक सप्ताह पुलिस ने मुझे छावनी के थाने मे रखा जहा उनके अमानुषिक व्यवहार के होते हुए भी पुलिस मुझसे कुछ भी दल के सम्बन्ध मे जानकारी न प्राप्त कर सकी। एक सप्ताह बाद मुझे कानपुर जेल मे भेज दिया गया, जहाँ पाव मे बेडिया डालकर मुझे एक महीने एकान्तवास (Solitary Cell) मे रखा। खाना सी क्लास का मिलता था जो मैं खा नही पाता था। जब एक महीने पश्चात् मुझे दिल्ली ले जाया गया तो प्रात ६½ बजे ही कचहरी मे मैं बेहोश हो गया और जब ३½ बजे दोपहर मुझे होश आया तो मैं दिल्ली जेल मे था।

षड्यन्त्र अभियोग फरवरी १६३३ मे सरकार ने लौटा लिया और मुझे कानपुर मे आर्म्स एक्ट मे १६ फरवरी, १६३३ को दो वर्ष का कठोर कारावास की सजा मिली। एम० ए० पास और एक कालेज का अध्यापक होते हुए भी मजिस्ट्रेट ने मुझे सी क्लास मे रखा। जेल मे मुझे फिर एक बार बेडिया पहना दी गईं। मेरे छ दिन की भूख हडताल के पश्चात् जेल अधिकारियो ने मुझे गोडा जेल मे भेज दिया जहा मैं लगभग एक वर्ष बेडियो समेत एक काल-कोठरी मे पडा सडता रहा। उस समय मेरे बचने की कोई आशा नही थी। लगभग एक वर्ष पश्चात् मुझे बी क्लास देकर बनारस सेण्ट्रल जेल भेज दिया

गया। वहाँ कानपुर के हलधर बाजपेयी, अशोककुमार बोस और सत्गुरुदयाल अवस्थी पहले से ही अपनी-अपनी सजा काट रहे थे।

गोंडा के कारावास में मुझे आँतों का तपेदिक हो गया था। बनारस में यह कुछ बढ़ता ही गया और अगस्त १९३४ में सरकार ने मुझे छोड़ दिया।

बाहर आने पर पहले मैंने अपना इलाज कराया और फिर राजनैतिक क्षेत्र को छोड़ टाटा की नौकरी कर ली। १९४१ में मैंने अपना निजी कारोबार दिल्ली में प्रारम्भ कर दिया।

कहते हैं कि स्वाधीनता के युद्ध में जिसने कभी एक बार भी ईमानदारी और तन्मयता से काम किया हो वह स्वाधीनता के पाने तक इस युद्ध से विरक्त नहीं हो सकता। कम-से-कम मेरे साथ तो ऐसा ही हुआ। दूसरे विश्वयुद्ध में १९४२ के प्रारम्भ में अंग्रेजों की हालत खस्ता थी। जापान आगे बढ़ता ही चला आ रहा था। अंग्रेज शासकों ने भारत को निस्सहाय छोड़ अपने भागने की पूरी तैयारी कर ली थी। कांग्रेस के नेताओं के सामने एक बहुत बड़ी समस्या थी, अंग्रेजों के भारत छोड़ने पर किसी प्रकार जापान अपना स्वामित्व भारत पर न जमा ले।

लगभग बन्द-सा हो गया था, पुनर्संगठित किया। ६ अगस्त, १६४४ को दो वर्षों के बाद पहली पब्लिक मीटिंग दिल्ली के गाधी मैदान मे हुई जिसका मैं प्रधान था और दूसरे वक्ता थे गोपीनाथ अमन और मौलाना हिफ़ीजुर्रहमान।

इस सभा की सफलता के कारण काग्रेस का पुनर्संगठन कुछ आसान हो गया। परन्तु इससे अवसरवादियो को भी आगे आने का अवसर मिल गया। चूंकि मैं अपने जीवन मे कभी अवसरवादी नही रहा, मै दिल्ली छोड बम्बई चला गया।

१६५७ मे मैं यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा फौरेन पोस्टिंग के लिए चुना गया। मैं पहले पाकिस्तान मे तीन वर्ष कराची-स्थित फर्स्ट सेक्रेट्री कमर्शल रहा और उसके पश्चात् कुवेत मे ट्रेड कमिश्नर तथा काउन्सल जनरल नियुक्त हुआ। इस पोस्ट से मैं १६६२ के दिसम्बर मे रिटायर हो गया।

१८३७ मे मुगलो का अन्तिम राजा बहादुरशाह जफर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसके सिंहासन पर बैठने मे अंग्रेजो ने उसकी सहायता की थी। वह वृद्ध था। शेर और शायरी मे व्यस्त अपने अन्तिम दिन आराम के साथ व्यतीत करना चाहता था। परन्तु देश भर मे आराम कहा था? जहा एक ओर अंग्रेजी फौज के भारतीय सैनिक अंग्रेजो की क्रूर जाति भेद की नीति से तग आ चुके थे और प्रस्तुत थे कि समय आने पर वे अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह कर देंगे, दूसरी ओर आम जनता भी अत्यन्त दुखित थी। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ही तग थे। अंग्रेजो के मशीनो द्वारा तैयार किए हुए माल ने भारत के छोटे-छोटे धन्धो का अन्त कर दिया था जिससे लाखो लोग बेकार हो गए थे। भारत के किसानो से उनकी जमीन, जो हजारो वर्षो से उनकी अपनी ही थी, छीन कर रुपये वालो को बाट दी गई थी। वे सभी भारतीय जो मुगलो तथा अन्य भारत के राजाओ के दरबारो मे नौकरिया करते थे, अपनी नौकरिया और धन्धे खो बैठे थे। सुलभ और शीघ्र न्याय करने वाले भारतीय न्यायालयो को अंग्रेजी अदालतो मे बदल दिया गया था जहा रिश्वत का बाजार गर्म था और जहा रुपयो से निर्णय खरीदा जा सकता था। एक भद्र पुरुष के लिए अदालत मे जाना मौत से भी बुरा समझा जाने लगा था। सबसे अधिक धक्का तब लगा जब अंग्रेजो ने हिन्दू और मुसलमानो को ईसाई बनाना आरम्भ किया। ऐसे ईसाइयो को विशेष अधिकार दिए जाने लगे। महारानी विक्टोरिया ने १८५४ मे उस समय के अपने वायसराय लार्ड डलहौजी को २४ नवम्बर को अपने पत्र मे लिखा था "भारत मे रेलो के चालू (Introduction) होने से बहुत अन्तर हो जाएगा। इसकी सहायता से भारतीयो को सभ्य बनाया जा सकेगा और सभ्य बन कर सभी भारतीय ईसाई बनाए जा सकेंगे।" जैसे कि वे सब लोग जो ईसाई नही थे, असभ्य थे।

हिन्दू तथा मुसलमानो को यह बहुत ही बुरा लगा और उन्होंने भारतीय सैनिको से मिल भारत की पहली स्वतन्त्रता की लडाई १८५७ मे छेड दी। वह लडाई क्यो असफल हुई उसके कारण इस पुस्तक मे नही दिए जा सकते। परन्तु उस विफलता का एक घोर परिणाम था अंग्रेजो का हिन्दू और मुसलमानो को पृथक्-पृथक् रखना और एक दूसरे को लडा कर अपना प्रभुत्व जमाए रखना। यह पालिसी तथा अंग्रेजो का प्रभुत्व लगभग ९० वर्ष तक चला और १९४७ मे भारत के दो टुकडे करके ही समाप्त हुआ।

परन्तु जब किसी भी गुलाम देश मे एक बार स्वाधीनता की अग्नि की

ज्वाला जल जाती है, तब वह पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हुए बिना बुझा नही करती। अमरीका मे अग्रेजो के विरुद्ध जार्ज वाशिगटन के नेतृत्व मे जीता हुआ युद्ध, इटली मे मेजिनी और गेरीवाल्डी के नेतृत्व मे आस्ट्रिया के विरुद्ध सग्राम तथा इसी शताब्दी मे आयरलैण्ड का डीवेलरा आदि सिनफाइन नेताओ का अग्रेजो से लड कर स्वाधीनता प्राप्त करना, कुछ उदाहरण अपने सामने हैं। भारत मे भी गेरीवाल्डी और डीवेलराओ की कमी नही रही है। खुदीराम बोस, लाला हरदयाल, मैडम कामा, वीर सावरकर, कृष्णमोहन मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी, रासबिहारी बोस, पिंगले, करतार सिंह आदि सैकडो व्यक्तियो ने अपने तन, मन और धन तथा परिवारो को त्याग कर अपने को स्वाधीनता के सग्राम मे झोक दिया और स्वराज्य के मन्त्र का जाप करते हुए या तो गोलियो का शिकार बन गये या हसते-हसते फासी के तख्ते पर चढ गए। जान गई पर आन रख ली। १९२७ मे रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिरी और रोशनसिंह भी ऐसी ही लडाई लडते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की फासियो के शिकार हुए और अशफाक उल्लाह ने फासी के तख्ते पर उनका साथ देकर ससार को बता दिया कि भारत के सभी मुसलमान अग्रेजो की क्रूर नीति का साथ नही दे रहे थे।

इन्ही आन पर मिटने वालो मे से श्री चन्द्रशेखर आजाद एक अभूतपूर्व व्यक्ति थे जिन्होने अपने छोटे से जीवन मे अग्रेजी साम्राज्य की जडो को समस्त भारत मे हिला दिया और लगभग छ साल उनको चैन की नीद नही सोने दी। इस छोटी-सी पुस्तक मे इन्ही महापुरुष की छोटी किन्तु अति महत्वपूर्ण जीवनी का सक्षिप्त उल्लेख है। सक्षिप्त इस कारण कि उनके सम्बन्ध मे किसी भी एक या एक से अधिक व्यक्तियो को अधिक मालूम नही है। मुझे जितना मालूम है और जो उन्होने मुझे मेरी बीमारी मे मेरे साथ रहते-रहते कभी-कभी सुनाया था, वही इस पुस्तक मे प्रस्तुत है। जो कुछ अन्य साथियो से ज्ञात हुआ है वह भी सक्षेप मे इस पुस्तक मे शामिल कर लिया है।

आजाद और मैं

१९२८ मे जब मैं एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, कुदसियाघाट के जमना के किनारे रामनगर की बागो के पक्के घाट के एक कमरे म रहा करता था। पास ही के लाला लछमनदास के घाट मे कुछ और विद्यार्थी भी रहा करते थे। उनमे एक काशीराम भी था जो उस समय एम० ए० के प्रथम वर्ष मे था। वह प्राय मेरे पास आकर अग्रेजी आदि सीखता था। बातचीत मे भारत की स्वाधीनता, अग्रेजो की क्रूरताओ आदि पर भी विचार-

विमर्श होता रहता था। एक दिन उसके साथ एक नया व्यक्ति आया, जिसका कद छोटा, रंग काला और गोल चेहरा था। काशीराम ने उसको अपना एक मित्र बताया और कहा कि वह भी अध्ययन कर रहा है और उसके ही साथ रहेगा।

उस दिन से वह भी कभी-कभी मेरे पास आने लगा और बातचीत मे भाग लेने लगा। कुछ दिन पश्चात् वह वहा से चला गया। थोडे ही दिन बाद काशीराम मेरे पास आया और उस व्यक्ति का हवाला देते हुए बोला कि कुछ दिन पहिले वह दो और व्यक्तियो को अपने साथ लाया था जो मुझसे भी मिले थे। वे दोनो *व्यक्ति क्रान्तिकारी काम करते हुए सहारनपुर मे पकडे गये* हैं और हो सकता है कि वे काशीराम का तथा मेरा नाम और पता भी दे दें। मुझे होशियार रहना चाहिए। मैं सतर्क तो हो गया, परन्तु यदि मेरा नाम वे लोग ले भी देते तो मैं कर ही क्या सकता था। हा, स्वाधीनता पर बहस के अतिरिक्त मेरा उनसे और कोई नाता नही था। खैर उन दोनो व्यक्तियो ने जिनका नाम शिव वर्मा और जयदेव कपूर था, मेरा या काशीराम का नाम नही लिया। वह जो काला व्यक्ति था वह कैलाशपति था जिसका उस समय दल का नाम शीतलप्रसाद था।

कुछ दिन बाद कैलाशपति फिर वहा आकर मुझे मिला और कहा कि वह अब कही बाहर, शायद ग्वालियर जा रहा है। वह चादनी रात मे मुझे मिला था और मुझे स्मरण है मैंने उसको कहा था "शीतल, तुम तो चादनी रात मे एबोनाइट की तरह चमक रहे हो।" उसको बहुत बुरा लगा था और उसने मेरी बुराई काशीराम से की थी।

१६२६ मे कैलाशपति फिर दिल्ली आ गया और दिल्ली के दल का भार सभाल कर उसके सगठन मे जुट गया। वह मुझसे भी यदा-कदा मिलता रहा। अक्तूबर १६२६ मे मैं हिन्दू कालेज मे लेक्चरर नियुक्त हो गया और साथ ही होस्टल का सुपरिटेण्डेण्ट भी। यह होस्टल ४ रामचन्द्र लेन, मैटकाफ हाउस रोड पर स्थित था। वहा मेरे पास एक बडा और एक छोटा कमरा था और साथ ही बाथ रूम। मेरे वहा जाने के पश्चात् कैलाशपति भी मेरे पास ही आकर रहने लगा।

उन दिनो लाहौर षड्यन्त्र केस चल रहा था जिसमे भगतसिंह आदि अभियुक्त थे। केस समाचार-पत्रों मे पूर्ण रूप से प्रकाशित किया जाता था और प्रत्येक मुलजाती गवाह पण्डित चन्द्रशेखर की वीरता, अचूक निशानेबाजी और

उनके भव्य नेतृत्व (लीडरशिप) की बडाई करता था। लोग पण्डित जी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक पाये जाते थे। उन उत्सुको मे मैं भी एक था। मैंने कई बार कैलाशपति से कहा था कि यदि पण्डित जी दिल्ली आए, तो वह उनसे मुझे अवश्य मिलवाए। कैलाशपति कुछ उत्तर नही देता था।

२२ दिसम्बर १६२६ की बात है। मैं जब कालेज से होस्टल लगभग ३ बजे लौटा तो मैंने देखा कि मेरे बडे कमरे मे चार व्यक्ति आपस मे घुलमिल कर बात-चीत कर रहे है। उनके व्यवहार से ऐसा प्रतीत हुआ कि वे किसी गम्भीर आशय पर विचार या वाद-विवाद कर चुके थे, उन सभी के मुख गम्भीर थे। मेरे वहा पहुचने पर तीन व्यक्ति तो चले गये परन्तु एक भारी-भरकम हृष्ट-पुष्ट लगभग २२-२३ वर्ष का व्यक्ति वही रहा। वह सफेद धोती, आधी बाहो वाली सफेद कमीज़ तथा एक ठण्डा कोट और पाव मे चप्पल पहने हुए था। उसने मुझे देखकर नमस्कार किया और मैंने भी उसको नमस्कार किया। थोडी देर बाद कैलाशपति आया और मुझे छोटे कमरे मे ले जाकर बोला—"तुम पण्डित जी से मिलने के उत्सुक थे न, आज मैं तुम्हे पण्डित जी से मिलवा रहा हूँ। तुम इसी कमरे मे ठहरो।" मैंने समझा पण्डित जी कैलाशपति के साथ कही बाहर से आये है। मेरी कल्पना मे वह बडे कद के लम्बे-चौडे शरीर वाले तथा सूट-बूट से सुसज्जित होने थे। एक ही मिनट बाद वही सज्जन जिन्होने मुझे नमस्कार किया था, उस कमरे मे आये और बोले "आप मेरे से मिलना चाहते थे। मैं ही पण्डित जी हू।" मैं उनको देखकर अवाक् रह गया। गला भर आया। आखो मे पानी आ गया। मैंने लपक कर उनके पाव छुए। उन्होने तुरन्त ही मुझे उठा अपने गले से लगा लिया और बोले कि अब हम तुम्हारे पास ही रहेंगे।

उस दिन से वह मेरे साथ मार्च १६३० के अन्त तक रहे। १४ फरवरी को मुझे टाइफाइड का रोग हुआ। वह ३२ दिन तक चला। एक दिन ज्वर उतरा और फिर रिलैप्स हो गया और कई महीने चला। पण्डित जी मेरी सारी बीमारी मे, जब तक मैं होस्टल मे रहा, मेरी तीमारदारी करते रहे। डाक्टर बोस के यहा से दवाई लाते रहे। यही वे दिन थे जब कभी-कभी वह अपने जीवन की पुरानी बातें बताते थे। वह कभी धारावाहिक रूप मे नही बताईं। कभी कोई बात और कभी कोई। यही कारण है कि पण्डित जी की इस जीवनी मे पाठको को कई स्थान ऐसे मिलेंगे जिनमे उनकी जीवनी का उल्लेख नही हो पाया है। तब भी जो कुछ उन्होंने मुझे अपनी जबान से बताया

मै उसी को इस पुस्तक मे पाठको के सामने रख रहा हूँ। मेरे अपने पकडे जाने (४ दिसम्बर, १६३०) से लेकर उनके जीवन के अन्तिम दिन (२७ फरवरी १६३१) तक का हाल मैने कुछ तो समाचार-पत्रो से एकत्रित किया है, परन्तु अधिकतर वह मुझे १६३२ मे यशपाल और सुखदेव राज ने बताया था जो दोनो पण्डित जी के साथ अन्तिम समय मे थे। मुझे खेद है कि यशपाल ने अपने सिंहावलोकन मे उस अन्तिम समय को एक भिन्न रूप दे दिया है। परन्तु, मै तो अपनी स्मरण-शक्ति को नही भुला बैठा हूँ। मेरे हृदय के पट पर पण्डित जी की हरएक बात जो उन्होने कही या किसी दूसरे ने सुनाई, अंकित है, और वही मैं इस पुस्तक मे लिख रहा हूँ।

यहा मैं यह बता देना उचित समझता हू कि पण्डित जी के सम्बन्ध मे अनेक किवदन्तिया फैली हुई है। कुछ लोगो ने उनके सम्बन्ध मे पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमे इन लोगो ने पण्डित जी से अपनी घनिष्टता खूब रगी है। मैं यह कहने मे असमर्थ हूँ कि जो कुछ इन लोगो ने लिखा है वह सभी सत्य है। परन्तु दो-एक ऐसी पुस्तकों के पढने के पश्चात् तो ऐसा लगता है कि इन लोगो का पण्डित जी से अधिक सम्बन्ध नही था। यह सत्य है कि पण्डित जी जब तक जीवित रहे, उनकी प्रशसा समस्त देश मे फैली हुई थी, अनेक लोग उनकी वीरता की सराहना करते थे। कई तो उनसे मिलने के भी उत्सुक थे। परन्तु मिलना भी नही चाहते थे क्योकि उनको अपने पकडे जाने का भय था। यही नही यदि ऐसे व्यक्तियो से दल के लिए कुछ रुपया मागा जाता था तो वह बहाने कर दिया करते थे, परन्तु चन्दा नही देते थे।

एक और बात स्पष्ट करने योग्य है। यह सम्भव है कि दल के कुछ सदस्य पण्डित जी के सम्बन्ध मे एक ही बात को भिन्न रूप से देश के सामने प्रस्तुत करें। यह कहना कठिन होगा कि कौन-सा या किसका वर्णन सही है। हो सकता है पण्डित जी ने स्वय ही भिन्न-भिन्न सदस्यों को भिन्न-भिन्न रूप मे बताया हो। यह तो दल का नियम था ही कि कोई भी सदस्य किसी दूसरे सदस्य से न उसका असली नाम पूछता था और न ही उसके सम्बन्ध मे कुछ जानकारी कर सकता था। जो भी सदस्य बता देता था वैसा ही ठीक मानना पडता था।

इस बात का मुझे तब आभास हुआ जब पण्डित जी के सम्बन्ध म १६६४ में ग्वालियर से एक विशेष अक निकला। उस अक मे पण्डित जी के सम्बन्ध मे कई ऐसे लेख हैं जो भिन्न-भिन्न रूप से लिखे गये हैं और सभी

लेखको ने यह लिखा है कि पण्डित जी ने उनको ऐसा बताया था, अथवा उन (लेखको) की जानकारी मे ऐसा हुआ था। फिर भी कई बातें तो उन लेखो मे मेरी अपनी जानकारी मे, सत्य नही हैं। यही कहा जा सकता है कि शायद पण्डित जी ने उनको उसी प्रकार बताया हो जैसा उन्होने लिखा है।

इसीलिए मैं पाठको को भूमिका मे ही बता देना चाहता हूं कि जो कुछ भी मैं इस पुस्तक मे पण्डित जी के सम्बन्ध मे लिख रहा हूं, उसकी सत्यता अथवा असत्यता की गारण्टी न लेकर यही कह रहा हूँ कि मैं केवल वही लिख रहा हू जो पण्डित जी ने स्वय मुझे बताया था या जो कुछ मेरे उनके समीप आने के पश्चात् घटित हुआ था।

पंडित जी की बाल्यावस्था

पण्डित जी का रोमाचक जीवन उनकी १३ वर्ष की आयु मे आरम्भ हुआ। उनका जन्म भावरा, तहसील अलीराजपुर रियासत मे २३-७-१६०६ को (उनकी माता के कथनानुसार) हुआ था। उनके पिता सीताराम जी ने अपना अधिकतर जीवन अलीराजपुर रियासत मे अपनी पत्नी जगरानी देवी के साथ बिताया था जहा वह नौकरी से रिटायर होकर राज्य के उद्यानो के सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हो गए थे केवल आठ रुपये मासिक वेतन पर। पण्डित जी को उन्होने भावरा की तहसील के प्राथमिक विद्यालय मे भरती करा दिया था। इस विद्यालय मे अधिकतर उस राज्य के आदिवासी भीलो के लडके पढते थे। पण्डित जी बहुत ही थोडे दिन उस विद्यालय मे पढ पाए थे। परन्तु जब उनकी माता जगरानी देवी जी मुझे दिल्ली मे १६४५-४६ मे मिली थी तो उन्होने अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वह अति आभारी होगी यदि लोग पण्डित जी के नाम से भावरा मे एक हाई स्कूल अथवा माध्यमिक विद्यालय खुलवा दें। पण्डित जी के जन्मस्थान के सम्बन्ध मे भी कुछ लोगो का विचार है कि उनका जन्म भावरा मे नही हुआ था, उन्नाव जिले के बदरिका गाव मे हुआ था। ये लोग हर वर्ष बदरिका मे पण्डित जी के नाम से एक मेला भी लगाते है। जहा तक मेले का प्रश्न है अथवा पण्डित जी के बलिदान की गाथाओ का प्रचार है, उसमे किसी को भी विरोध नही हो सकता। परन्तु अधिकतर पण्डित जी के सभी साथियो के विचार मे उनका जन्म भावरा मे ही हुआ था। ऐसा ही पण्डित जी ने मुझे स्वय भी बताया था।

हा, पण्डित जी के पिता सीताराम तिवारी जी अवश्य उन्नाव जिले के रहने वाले थे। उनके तीनों विवाह भी इसी जिले म हुए थे। पण्डित जी की माता जगरानी देवी तिवारी जी की तीसरी पत्नी थी।

पण्डित जी के पिता सीताराम जी वडे क्रोधी थे। वह अपने लडके को अपनी कडी निगरानी मे रखा करते थे और उनके पढने-लिखने पर अधिक जोर देते थे। पण्डित जी को उनसे स्नेह कम था, डर अधिक। इस पिता के स्नेह के अभाव को उनकी माता पूरी करती थी जिनको अपने पुत्र से अगाढ प्रेम था।

एक दिन पण्डित जी, जब उनकी आयु १३ वर्ष की थी, उस राज्य के एक बाग मे से, जिसके उनके पिता सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, चार बडे-बडे आम के फल तोड कर घर ले आए। माली ने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब के पुत्र होने के नाते उनको रोका नही। जब उनके पिता ने घर पर चार आम रखे देखे तो उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा कि आम कहा से आए। पत्नी ने उत्तर में पण्डित जी का नाम बता दिया। सीताराम जी को क्रोध आया और उन्होने पण्डित जी को चोरी करने पर लाछना की और बहुत डाटा। माता ने पुत्र का पक्ष लिया। इससे पिता का क्रोध और भडक उठा और उन्होने पण्डित जी को माली को आम लौटा देने के लिए कहा। माता को अपना पक्ष लेते देख पुत्र ने आम लौटा देने से इन्कार किया और साथ ही कह दिया कि वह माली से क्षमा याचना भी नही करेंगे। सीताराम जी के क्रोध की सीमा नही रही। उन्होने पण्डित जी को घर से बाहर निकाल दिया और कहा कि जब तक वह माली से क्षमा नही मागेंगे वह उनको घर मे नही घुसने देंगे। घर का अन्दर से कुण्डा बन्द कर अपनी पत्नी से कह दिया कि यदि उन्होंने द्वार खोला या अपने पुत्र का पक्ष लिया तो वह उनको भी घर से बाहर निकाल देंगे। यह सब लगभग नौ बजे रात को हुआ था।

पण्डित जी भी सीताराम के पुत्र थे। उनका भी क्रोध भडक उठा। उन्होंने भी बाल हठ ठान ली कि वह माली से क्षमा मागेंगे ही नही। वह घर के अन्दर उस समय तक नही जाएगे जब तक उनके पिता स्वय ही बाहर आकर उनको घर मे नही ले जाएगे। वह १३ वर्षीय बालक की बाल हठ उनकी प्रतिज्ञा मे बदल गई जो उन्होंने लगभग आजीवन निभाई केवल एक बार छोडकर वह १९२८ में अपने कितने ही साथियों के अनुरोध पर सदाशिव राव मलकापुरकर को साथ ले भावरा गये थे और अपने माता-पिता के पास केवल २४ घण्टे ही ठहरे थे। उसके पश्चात् उनके मन मे कभी भी यह विचार

आजाद की माता जी

नहीं आया कि वह अपने माता-पिता के दूसरी बार दर्शन कर लें। विचार आने का समय ही कहाँ था। उस समय उनकी तो एक ही लगन थी। किस प्रकार दल का सुचारु रूप से सगठन करें। किस प्रकार अग्रेजो के विरुद्ध लडाई लडें और किस प्रकार देश को स्वाधीन करायें। अब उनके जीवन मे माता-पिता का कोई स्थान नही था। उनका कुटुम्ब था उनके दल के साथी। यहाँ तक जब उनको एक बार कानपुर मे एक सज्जन ने कुछ रुपये अपने माता-पिता को भेजने के लिये दिये तो उन्होने उन रुपयो को दल के काम मे लगा लिया यह कह कर कि माता-पिता से अधिक आवश्यकता उस रुपये की दल को है।

पण्डित जी घर के बाहर अधेरी रात मे अकेले लगभग १२ बजे तक अपने पिता से बुलाये जाने की प्रतीक्षा देखते रहे। जब पिता नही आये तो वह पास ही के एक गाव मे अपने चचेरे भाई मनोहरलाल तिवारी के घर चले गए और वही २४ घण्टे अपने पिता के आने और उनको गले लगाकर घर लौटा ले जाने का स्वप्न देखते रहे। परन्तु यह विवाद तो पिता और पुत्र के बीच था। पिता पुत्र से भला कैसे हार मान सकते थे। वह नही आए। पण्डित जी के चचेरे भाई जिसके पास वह उस समय ठहरे हुए थे तथा भावज ने उनसे कहा कि वे दोनो उनके पिता के पास लौटा देंगे। परन्तु पण्डित जी ने घर लौटने मे इन्कार कर दिया। भाई ने कहा कि पण्डित जी उसी के पास रहकर विद्या अध्ययन कर सकते हैं। परन्तु उसी रात पडित जी ने भाई-भावज के बीच वाद-विवाद सुन लिया जिसमे भावज ने अपने पति से कहा था कि वह चन्द्रशेखर को दूसरे दिन प्रात उनके पिता के पास ही छोड आयें। पण्डित जी ने उसी समय निश्चय कर लिया कि वह उस घर मे भी नही ठहरेंगे। यह था निश्चय तथा सकल्प एक १३ वर्षीय बालक का जिसने उसके जीवन की धारा को पूर्णतया बदल दिया और भारत को उसके बलिदान पर गौरव करने का और दास होते हुए भी अपना सिर ऊचा करने का अवसर दिया।

पण्डित जी के बम्बई जाने के सम्बन्ध मे मैंने वही लिखा है जो पण्डित जी ने स्वय मुझे बताया था। परन्तु उनके चचेरे भाई मनोहरलाल तिवारी ने इस बात का किसी अन्य ही रूप मे वर्णन किया है। उनके कथनानुसार आजाद का एक मौनी या त्यागी अपने साथ बम्बई ले गया था और कतिपय वैशम्पायन ने भी लिखा है। विचार मनोहरलाल जी ने [illegible] कर अपनी पुस्तक मे स्पष्ट किया है।

मैं इसका दावा तो नहीं कर सकता कि जो मैंने लिखा है, वही सत्य

है । परन्तु अधिक सत्य तो मेरे ही कथन मे दीखता है । कारण यह है

(१) पण्डित जी का एक अनभिज्ञ व्यक्ति के साथ भावरा छोडना ।

(२) उनका अपने माता-पिता अथवा भाई भावज से आज्ञा न लेना, इतना ही नही उनको बताना भी नही ।

(३) मोती वाले का पण्डित जी को बम्बई की गलियो मे ले जाकर छोड देना । वह उनको अपने ही घर ठहरा सकता था अथवा उनका कुछ अन्य प्रबन्ध कर उनकी नौकरी या काम-काज की व्यवस्था तो कर सकता था । पर पण्डित जी के कथनानुसार ही उन्होने होटल मे नौकरी की थी ।

वम्बई की यात्रा

पण्डित जी ने अपने भाई का घर प्रात ४ बजे छोडा जब दोनों सो रहे थे। उन्होंने दोहद की ओर कदम उठाया। वह उसी एक ओर जाने वाली सडक पर चलते ही रहे। जब थक जाते, थोडा विश्राम कर लेते और फिर चलने लगते। डर था कि कही भाई आकर पकड कर लौटा न ले जाए। खाने की दुकानें रास्ते मे पडी। परन्तु पैसा पास न था। अत चलते ही रहे, भूखे तथा थके-मादे। परन्तु कदम न रुका। २४ घण्टे के अन्दर लगभग चालीस मील की यात्रा कर दोहद स्टेशन पर पहुचे। वहा एक रेल गाडी खडी थी। उसी गाड़ी के एक डिब्बे मे जाकर लेट गए। थक कर चूर हो गए थे। लेटते ही सो गए। जब आख खुली तो देखा एक बडा-सा स्टेशन है। गाडी सब खाली हो गई है। बाहर निकल कर पूछने पर ज्ञात हुआ वम्बई है। शहर की ओर चल दिए। जब गोदी (मालगोदाम) के समीप पहुचे तो वहा खाने के होटल देखे। एक मे लिखा था। "राइस प्लेट चालू आहे"। पूछा यह क्या होता है, मालूम हुआ, चावल भात तैयार है। भूख से विचलित हो गए। दुकानदार से दाम पूछने पर पता चला एक प्लेट दो आने मे मिलती है। परन्तु दो आने कहा थे। उन्होंने दुकानदार से नौकरी देने की प्रार्थना की। दुकानदार ने परिहास से कहा "जा अभी दूध के दात तो टूटे नही हैं नौकरी करने आया है।" परन्तु पण्डित जी हताश नही हुए। बोले भाई कोई छोटा-मोटा काम देकर देख लो, यदि न हो सके तो पैसे न देना। दुकानदार को उनकी अल्प वयस पर कुछ दया आ गई। उसने उनसे वर्तन साफ करने के लिए कहा जो उन्होंने कर दिए। दुकानदार ने

भी उनको राइस प्लेट दे दी । और यह मालूम होने पर कि पण्डित जी का वह पहला ही दिन बम्बई मे आए हुए था और उनके रहने या सोने का कोई ठिकाना नही था उनको दुकान बन्द करने पर अपनी दुकान के सामने सोने की आज्ञा भी दे दी।

पण्डित जी ने दूसरे दिन से उस दुकान पर कुछ काम करना आरम्भ कर दिया। दुकानदार इस काम के बदले उनको दो समय राइस प्लेट दे देता था और रात को वह उसी दुकान के सामने सो जाते थे। कुछ समय पश्चात् वह गोदी मे काम करने वाले मजदूरो के साथ काम करने लगे और उन्ही के साथ उनकी कोठरी मे सोने लगे। प्रात या शाम को समय पा कुछ और काम भी कर लिया करते थे जिससे उनको दो आने और अधिक से अधिक चार आने बच जाते थे। इनसे वह अधिकतर अपनी क्षुधा की तृप्ति ही करते थे। परन्तु कभी-कभी जब चार आने एकत्रित हो जाते थे तो वह सिनेमा, जो उस समय केवल अग्रेजी मे ही होता था, देख लेते थे । कुछ दिन सिनेमा न देखकर उन्होने एक नया कुरता तथा एक धोती भी खरीद ली थी।

ऐसा कितने दिन चलता रहा, पण्डित जी ने मुझे नही बताया और न ही यह मालूम हो सका कि वह कब और किस प्रकार बम्बई छोडकर बनारस चले गए। हा इतना अवश्य ज्ञात है कि वह १५ वर्ष की आयु मे बनारस पहुच चुके थे।

पण्डित जी १९२१ के आंदोलन से

पण्डित जी ने बनारस पहुच कर किसी हिन्दी स्कूल मे पढना प्रारम्भ कर दिया। इन्ही दिनो उन्हे कसरत का शौक हुआ और उन्होने किसी अखाडे मे कसरत करनी आरम्भ कर दी। आदत यह थी जिसमे मन लगाया उसी मे तल्लीन हो गए। थोडे ही दिनो म उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो गया, चेहरा गोल तथा शरीर गठीला हो गया और बल का भी यथाशक्ति सचारण हो गया।

उन दिनो बनारस के एक गुण्डे ने शरीफ आदमियो का रहना-सहना तग कर रखा था। बहू-बेटिया उससे बच कर चलती थी। सामने आने पर वह उनको छेडे बिना नही रहता था। सभी उससे डरते थे। पुलिस उससे मिल कर चलती थी, इसलिए किसी को भी उसका उसकी नीच कार्यवाहियो से रोकने का साहस नही होता था।

एक दिन शाम के समय पण्डित जी किसी बाज़ार से जा रहे थे। उसी बाज़ार मे वह गुण्डा भी अपने दो साथियो के साथ जा रहा था। सामने से एक युवती आ रही थी। उस गुण्डे ने उस युवती को कुछ अपशब्द कहे। वह उसको लाछना देने लगी। इस गुण्डे ने उसको अधिक छेडा और उसका हाथ पकड लिया। पण्डित जी ने यह सब देखा। उनसे रहा नही गया। उन्होने उस गुण्डे से युवती के हाथ छोडने को कहा। गुण्डे ने पण्डित जी के कहने की अवहेलना की। पण्डित जी ने उसको डाटा। उसने परिहास करते हुए कहा—"जा-जा, अभी तेरे दूध के दात तो टूटे नही है, मेरे से मुकाबला करने चला है। एक रैंपट (तमाचा) मारूगा तो बत्तीसो दात झड जाएगे।" पण्डित जी का क्रोध उबल पडा। उन्होने उस गुण्डे को ललकारा। गुण्डा युवती का हाथ छोड उन पर टूट पडा। पण्डित जी तो पहिले से ही तैयार थे। पैतरा बदल कर उसके खपच्ची भर के शरीर को पृथ्वी पर दे पटका और उसकी छाती पर चढ बैठे। बोले कि यदि वह उस युवती को बहन कह कर नही पुकारेगा तो वह उसका गला घोट देंगे। जब गुण्डे के साथियों ने हस्तक्षेप करना चाहा तो दूसरे लोगो ने, जो वहा राह चलते तमाशा देखने के लिए एकत्रित हो गए थे, उन्हे रोका। गुण्डे ने भी अपनी जान बचानी ही उचित समझी। उसने अपने साथियो को रोका। युवती को बहन कहकर क्षमा मागी। पण्डित जी ने उसे छोड दिया और वह अपने साथिया सहित वहा से चलता बना।

उस दिन के पश्चात् उस गुण्डे की गुण्डागर्दी तो सुनने मे नही आई परन्तु पण्डित जी के साहस तथा बल की चर्चा समस्त बनारस मे फैल गई। यह समाचार आचार्य नरेन्द्रदेव जी के कानो तक भी पहुचा और वह पण्डित जी को स्कूल से निकाल अपनी काशी विद्यापीठ मे ले गए जहा कि वह अध्यापक और सम्पूर्णानन्द उसके मुख्य अध्यापक थे।

पण्डित जी ने विद्यापीठ मे हिन्दी तथा सस्कृत का अध्ययन मन लगा कर आरम्भ कर दिया। परन्तु अधिक दिन नहीं हुए थे कि महात्मा गाधी द्वारा चलाया हुआ आन्दोलन ज़ोर पकड गया। सहस्रो स्त्री और पुरुष महात्मा गाधी की जय के नारे लगाते हुए जेल को प्रस्थान करने लगे। काशी विद्यापीठ के अनेको छात्र भी उस आन्दोलन मे शरीक हुए। भला पण्डित जी कब चुप बैठ सकते थे। वह भी हाथ मे झण्डा ले महात्मा गाधी की जय बोलते हुए आन्दोलन मे कूद गए। पकडे गए और खारेघाट आई० सी० एस० की अदालत मे पेश हुए। खारेघाट ने उनका नाम पूछा। उत्तर दिया 'आज़ाद'। पिता का नाम

'स्वाधीन' बताया और रहने का पता जेलखाना। आजाद तो यह अन्त क्षण तक रहे और स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए अपनी बलि भी दे दी। परन्तु जेलखाने को कभी घर नही बनाया।

खारेघाट मजिस्ट्रेट ने उनको १५ बेंतो की सजा दी। उनको जेल ले जाया गया और खुले मैदान मे १५ बेंत लगाये गये। पहिले १० बेंतो तक तो वह वन्देमातरम् कहते रहे परन्तु ११वा बेंत पडते ही उनके मुख से महात्मा गाधी की जय का नारा निकला। इतनी कम वयस के युवक प्राय १५ बेंत खाकर बेहोश हो जाते है या पीडा से चीख पडते हैं। परन्तु वाह रे वीर! कमर से लहू बह रहा था। खाल उधड चुकी थी। चरबी निकल आई थी परन्तु न तो चीख थी और न ही आखो मे आसू। मुख से केवल महात्मा गाधी की जय के नारे ही निकलते थे। सरदार गण्डासिह, जो उस समय बनारस जेल का जेलर था, पण्डित जी के साहस से बहुत प्रभावित हुआ और कोडे लग जाने के बाद उनको अपने घर ले गया और उनको गर्म-गर्म दूध का एक गिलास पिलाया (यह बात सरदार गण्डासिह ने स्वय मुझे १९३४ मे बनारस सेन्ट्रल जेल मे कही थी जब वह वहा सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल था और मैं दिल्ली षड्यन्त्र केस के सम्बन्ध मे अपनी सजा काट रहा था।) विद्यापीठ मे लौटने पर सम्पूर्णानन्द जी ने उनको आजाद के नाम से ही सम्बोधित किया और तभी से उनका नाम चन्द्रशेखर आजाद विख्यात हो गया।

विचार परिवर्तन

पण्डित जी जब बेंत खाकर लौटे तो उनके साहस की चर्चा सारे नगर मे फैल चुकी थी। लोग जेल के द्वार पर उनके स्वागत के लिए हजारो मे प्रस्तुत थे। वे पण्डित जी को कन्धो-कन्धो शहर मे ले गए और सारे शहर मे उनका जुलूस निकाला। एक आम सभा मे उनका चित्र भी लिया गया। चन्द्रशेखर 'आजाद' की जय के नारे लगाए। पण्डित जी इस भव्य स्वागत से प्रसन्न तो हुए परन्तु प्रभावित नही। वह काशी विद्यापीठ मे लौट विचारो मे डूब गए। वह था विचारो का सघर्ष। वह सोचने लगे क्या कुछ दिनो के लिए जेल जाकर, या कोडे खाकर, या महात्मा गाधी की जय बोल कर भारतवर्ष स्वाधीन कराया जा सकता है। उनके सन्मुख एक ओर था समस्त भारतवर्ष का उबलता हुआ जोश जो केवल जेल जाकर ही ठण्डा पड जाता था और दूसरी ओर अग्रेज हाकिमो की क्रूरता और उनकी पिटठू पुलिस की अन्धेर गर्दी। वह कितने ही दिनो इन विचारो के तर्क-वितर्क मे लिप्त रहे। अन्य विद्यार्थियो से बहस की

और आचार्य नरेन्द्रदेव जी से भी परामर्श किया। परन्तु वह किसी भी प्रकार इस विचार को अपना न सके कि केवल जेलयात्रा से भारत स्वाधीन कराया जा सकता है।

उस समय पण्डित जी की आयु लगभग १५ वर्ष की थी। शायद वह वयस ऐसे तर्क-वितर्क करने के योग्य न हो परन्तु पण्डित जी का १३ वर्ष की आयु मे घर का छोड देना और फिर उस ओर मुह न मोड अपने पाव पर खडा होना यह प्रतीत करता है कि वह उतनी छोटी आयु मे भी गम्भीर हो गए थे। और देश की स्वाधीनता की लडाई के सम्बन्ध मे कौन-सा मार्ग उचित होगा अथवा नही होगा, इस गूढ समस्या पर भी सोचने मे समर्थ थे। वह अन्त मे इस निर्णय पर पहुचे कि देश की स्वाधीनता अहिंसा के मार्ग द्वारा प्राप्त नही की जा सकती। उसको हासिल करने के लिए तो हिंसा का मार्ग अपनाना ही होगा। अग्रेज अहिंसा से भारत को कभी नही छोडेंगे परन्तु उनको डराकर, मारकर अथवा इसी प्रकार के अन्य साधनो से भारत से भगाया जा सकता है। आयरलैण्ड का ताजा ही उदाहरण उनके सन्मुख था। उनके सामने उस समय दोनों रास्ते खुले थे। एक था काग्रेस का जिसमे उनको अधिक से अधिक साल छै महीने की जेल काट लीडर बनकर बाहर निकलना, अपनी जय-जयकार सुनना, फूलो की मालाओ से स्वागत कराना और बिना हीग या फिटकरी लगाये लीडर बन जाना। दूसरा मार्ग था, अपने सब सुखो, शान्ति तथा कुटुम्ब का त्याग, लडते-लडते मर जाना या पकडे जाने पर आजीवन सी क्लास के कारावास मे जीवन बिताना। एक मार्ग था सुगम और सुलभ और दूसरा था दुर्गम और कठिनाइयों से पूर्ण।

परन्तु पण्डित जी को लीडर बनने की इच्छा नही हुई। उन्हे सुख और शान्ति का विचार भी न आया। उनके सामने तो थी देश की स्वाधीनता। वह इसी निर्णय पर पहुचे कि यह स्वाधीनता दुर्गम मार्ग को अपनाने से ही समीप लाई जा सकती है। इस निर्णय पर पहुचते ही उन्होंने काग्रेस से सम्बन्ध छोड क्रान्तिकारियों का मार्ग अपनाया।

क्रांतिकारी दल मे पदार्पण

तो खुदीराम बोस आदि अनेक गोली चलाते हुए मारे गए थे या फासी के तख्ते पर लटक चुके थे। देहली के प्रथम षड्यन्त्र केस के मास्टर अमीरचन्द, अवध-बिहारी आदि को फासिया हो चुकी थी। दूसरी वर्ल्ड वार के बीच भी लाला हरदयाल, वीर सावरकर, मैडम कामा, कृष्ण जी वर्मा, राजा महेन्द्रप्रताप सिंह तथा रासबिहारी बोस आदि अनेको वीरो की अनथक कोशिशें लगातार चल रही थी भारत को आजाद कराने के लिए। १६१८-१६ मे ब्रिटिश हिन्द सरकार ने एक रौलेट कमिटी भी बनाई थी जिसने लगभग ३०० पृष्ठों की पुस्तक मे क्रान्तिकारियो के कार्यों की चर्चा का उल्लेख किया था। सरकार-दमन की नीति का व्यवहार कर रही थी। वह यह न जानती थी कि दमन से युवको की स्वाधीनता की अग्नि बढती ही है, दबती नही। एक दल क्रान्ति-कारियो का पकडा जाता था, दूसरा क्षेत्र मे कूद पडता था। रिले रेस की भाति उनकी कार्यवाहिया चलती रहती थी। चुनाचे १६२२-२३ मे भी बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और पजाब मे कई ऐसे युवक, जिनका ध्येय क्रान्ति से स्वाधीनता प्राप्त करना था, एक सूत्र से बधे हुए थे। उनका प्रयत्न दल के सदस्य बढाना और समय-समय पर कोई न कोई 'एक्शन' करने की ओर लगा रहता था।

बनारस मे भी उस दल का सूत्र था मन्मथनाथ गुप्त और प्रणवेश चैटरजी के रूप मे। जब मन्मथ ने पण्डित चन्द्रशेखर आजाद की वीरता सुनी तो उन्होने उनसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया। वे दोनो भी काशी विद्यापीठ के विद्यार्थी थे। उन्ही दिनो बगाल के क्रान्तिकारी दल ने श्रीयुत् जोगेशचन्द्र चैटरजी को उत्तर प्रदेश मे दल को बढाने और उसका सगठन करने के लिए भेजा था। मन्मथ तथा प्रणवेश द्वारा पण्डित जी का सम्पर्क श्री जोगेश दा से भी हो गया।

उस समय उत्तर प्रदेश मे एक क्रान्तिकारी दल काम कर रहा था और काशी तो उस दल का सबसे बडा केन्द्र था। काशी मे भी काशी विद्यापीठ तो मानो क्रान्तिकारी बनाने के लिये ही चलाया गया था। उस दल के नेता श्री रामप्रसाद बिस्मिल थे। जो अधिकतर शाहजहापुर मे रहते थे। परन्तु दल के केन्द्र भिन्न-भिन्न नगरो मे मौजूद थे। दल के सगठन का कार्य चल रहा था। पण्डित जी को इस दल के अस्तित्व का मन्मथनाथ गुप्त ने ज्ञान कराया। प्रयत्न कर वह उस दल मे भरती भी हो गए। काशी मे ही बिस्मिल के मिलने से पहिले उनका परिचय शचीन्द्रनाथ बख्शी, राजेन्द्र लाहिरी तथा गोविन्द-

चरणकर से भी हो गया था। आज़ाद कम वयस के थे, परन्तु उनका जोश देख कर विस्मिल को अधिक सोचने की आवश्यकता ही नही हुई। दल मे उनको क्विक सिलवर (Quick Silver) से सम्बोधित किया जाने लगा।

क्रान्तिकारी दल के सदस्य अमीर लोगो के लडके नही होते थे। वे सभी सामान्य या गरीब घराने के होते थे। अपना सब कुछ दल को अर्पण करके भी धन इतना नही हो पाता था कि दल का साधारण काम भी चलाया जा सके। धनवानो अथवा दूसरे लोगो से प्रार्थना करने पर भी उनसे किसी प्रकार की सहायता नही मिलती थी। प्राय लोग क्रान्तिकारियो की बुराई भी करते थे और प्रशसा भी, परन्तु जब उनसे सहायता मागी जाती थी तो वे दुत्कार दिया करते थे। परन्तु क्रान्तिकारियो का कोई भी एक्शन बिना हथियारो के सम्भव नही था और हथियार ब्लैक मे ड्योढे पैसे देकर खरीदे जाते थे। परन्तु रुपए थे कहा ? क्रान्तिकारी रुपयो के अभाव से दल के काम को स्थगित करने के लिये प्रस्तुत न थे। यदि लोग सीधी तरह से पैसा न दें तो अमीर लोगो से जबरदस्ती छीना जाए। उसका एक ही मार्ग था—डकैती। इस राजनीतिक डकैती से एकत्रित किया गया रुपया चूकि भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने मे लगाना था इस कारण यह डकैती उतनी भीषण अथवा घृणास्पद नही लगती थी।

डकैती से पहले रामप्रसाद विस्मिल ने अन्य धन सचय करने के उपाय भी सोचे, परन्तु सफल न हुए। यह बात प्राय सभी जानते हैं कि साधुओ के मठो मे पर्याप्त धन होता है। ऐसे ही एक मठ मे उन्होने पण्डित चन्द्रशेखर को उन साधुओ के गुरु का शिष्य बनाकर भेजा। पण्डित जी ने सिर मुण्डवा लिया और गेरुए वस्त्र धारण कर लिए और बाट जोहने लगे कि कब गुरु मरेगा और कब उसकी गद्दी सभाल कर उस मठ मे सचित धन का सदुपयोग करेंगे। परन्तु गुरु था जो शीघ्र मरने वाला ही नही था। पण्डित जी ने विस्मिल को लिखा कि गुरु तो सण्ड-मुसण्ड दिन दुगना, रात चौगना बढता ही जा रहा है, उसके मरने तक तो वह स्वय भी वृद्ध अवस्था मे जा पहुचेंगे। बिस्मिल ने उनको वहा से बुला लिया।

काकोरी डकैती

सभी क्रान्तिकारी, नेता हो अथवा साधारण सदस्य, डकैती से घृणा करते थे। विशेषकर अपने ही भाई बन्धुओं को लूटना तो उनको अप्रिय था। इसलिए श्री रामप्रसाद बिस्मिल ने किसी अमीर व्यक्ति को न लूट सरकारी धन लूटने की योजना बनाई। यह योजना बनाते समय यह बात निश्चित कर ली गई थी कि इस योजना मे दल का राजनैतिक रूप स्पष्ट रहे जिससे जनता जान जाये कि यह डकैती साधारण न होकर देश की स्वाधीनता के युद्ध की एक कडी है। उनको विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि एक ट्रेन मे लगभग ३०,०००) रु दूसरे स्टेशनो पर बाटने के लिए लखनऊ से ले जाया जाता है। पहिले तो उन्होंने लखनऊ मे ही उस ट्रेन के कोष को लूटने की स्कीम बनाई, परन्तु डर था कि कही मार-काट न करनी पड जाए। बिस्मिल ने सभी सदस्यो को भिन्न-भिन्न कामो मे लगा दिया। पण्डित जी का काम था गाडी के साथ खडे होकर लोगो को बाहर न निकलने के लिये सावधान करना और रुपया मिलने के पश्चात् उसको दो थैलो मे भरकर साइकल पर थैले लटकाकर जगल-जगल लखनऊ पहुँच जाना। स्मरण रहे, उन दिनो नोटो का अधिक व्यवहार नही था। चादी के रुपये ही प्रचलित थे।

९ अगस्त १९२५ को जब गाडी काकोरी से लगभग दो मील गई थी कि जजीर खीची गई। गाडी रुक गई। रुकते ही कुछ लोग तो गाडी से बाहर निकल आए और अन्य सदस्य वहा पहले से ही प्रस्तुत थे। गाडी के दोनो ओर हर दो मिनट के बाद फायर हवा मे होने लगे। लोगो से कह दिया गया कि

गाडी को रोकने वाले डाकू नही है वे तो क्रान्तिकारी है। लोगो से वे कुछ नही बोलेंगे। परन्तु लोग भी अपने-अपने डिब्बो से बाहर न निकलें।

इस एक्शन के समय केवल तीन सदस्य ऐसे थे जो शरीर मे हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान थे। वे थे श्री बिस्मिल, श्री अशफाक उल्लाह और पण्डित जी। श्री बिस्मिल तो नेतृत्व कर रहे थे। अशफाक उल्लाह को गार्ड के डिब्बे मे उस सन्दूक को तोडने का कार्य सौपा गया जिसमे रुपया था। अशफाक के प्रयत्न करने पर भी जब बाक्स नही टूटा तो वह बिस्मिल के पास दौडा। उधर दूसरी ओर से गाडी आने का समय हो रहा था। बिस्मिल ने पण्डित जी की ओर देखा और पण्डित जी का सकेत पाते ही गार्ड के डिब्बे की ओर लपके। उन्होंने और अशफाक ने मिलकर सन्दूक को तोड डाला और पण्डित जी दस हजार रुपये थैलो मे भरकर साइकिल पर बैठ जगल-जगल २४ मील की यात्रा कर लखनऊ पहुच गए। इन रुपयो का वजन लगभग तीन मन था। पण्डित जी ने मुझे ऐसा ही बताया था, परन्तु मन्मथनाथ जी से पूछने पर उन्होंने बताया कि पण्डित जी को रुपये के सन्दूक तोडने का भार सौपा गया था। परन्तु जब पण्डित जी उस सन्दूक को तोडने मे असफल हुए तो अशफाक उल्लाह ने उनकी सहायता की और सन्दूक तोडा गया।

मन्मथ जी ने यह भी बताया कि रुपया पण्डित जी साइकिल पर नही ले गये थे। सभी दल मे सम्मिलित सदस्य पैदल चल लखनऊ पहुच गये थे और गोमती की ओर जाने वाले पथ के पास के जगल मे छिप गए थे। प्रात. जब गोमती मे स्नान करने के लिए स्त्री-पुरुषो ने आना-जाना आरम्भ कर दिया तो यह लोग भी उनमे रल-मिल कर अपने-अपने स्थानो पर पहुँच गये।

तो अशफाक के साथ सन्दूक तोडने मे व्यस्त थे। फिर भी बिस्मिल का सन्देह उन्ही पर बना रहा। पण्डित जी ने कई बार मुझसे बिस्मिल की प्रशसा की, परन्तु उनके इस सन्देह को वह दुखित दिल से कहते थे और कहा करते थे कि उन्होने कभी झूठ नही बोला, फिर भी बिस्मिल को उनपर सन्देह क्यो बना रहा। उनके विचार मे किसी अन्य सदस्य ने जिसको शायद पण्डित जी की सफलता से द्वेष हो गया हो, बिस्मिल से झूठ ही उनका नाम ले दिया था। दल के सदस्य कभी डाका डाल कर प्रसन्न नही होते थे परन्तु धन का अभाव उनको इस कार्य के लिये मजबूर करता था। डाका डालने के पश्चात् दल के सभी सदस्य दुखित हृदय को लिये उदास रहते थे। इन सबमे सबसे अधिक उदासीनता पण्डित चन्द्रशेखर को होती थी। डाके के समय यह सबसे अधिक चुस्त नजर आते थे, परन्तु डाके की घटना के पश्चात् वह कई-कई दिन किसी से बोलना नही चाहते थे, छोटी-छोटी-सी बातो पर चिढ जाया करते थे और क्रोधित भी हो जाया करते थे।

घर से बेघर

काकोरी के पास लूटी गई ट्रेन ने सरकार को चौकन्ना कर दिया। यह तो प्रत्यक्ष था कि लूटने वाले साधारण डाकू नही थे अपितु वे पढे-लिखे क्रान्तिकारी थे। सरकार को डाकुओ की अधिक परवाह नही होती। क्यो ? इस कारण कि वे सरकार मे उद्दण्डता नही करते। वे कानून अवश्य तोडते हैं परन्तु सरकार के अस्तित्व मे कुछ बाधा नही आती। थोडा-बहुत प्रयत्न कर सरकार यदि उनको पकडने में सफल हो जाए तो ठीक वरना सैकडो डाकू सैकडो डाके डालते रहते हैं और सरकार की हकूमत भी कायम रहती है।

परन्तु सियासी डाका असाधारण डाका होता है। वह होता है चुनौती सरकार को। सरकार सभी प्रकार के प्रयत्नों से ऐसे डाके का सुराग लगाती है और सच तो यह है कि वह सफल भी हो जाती है। इससे प्रत्यक्ष है कि यदि सरकार चाहे तो कोई कारण नही कि वह हर एक डकैती का पता क्यों न चला सके।

अभी रौलेट कमिटी की रिपोर्ट को छपे थोडे ही वर्ष बीते थे और ब्रिटिश सरकार तथा उसके प्रतिनिधि भारत सरकार का विचार था कि माण्टेगू चेम्सफोर्ड सिफारिशो से भारतीयों को अपने साथ ले लेंगे। हर दास देश मे ऐसे लोगों की कमी नही होती जो हाकिम वक्त का साथ देकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। भारत मे तो ऐसे व्यक्तियो की सख्या अधिक ही थी

और अब भी है। परन्तु महात्मा गाधी के १६१६ के सत्याग्रह ने इतना अवश्य सिद्ध कर दिया था कि जनता ब्रिटिश सरकार की राय से भेद रखती थी। १६१६ का सत्याग्रह १८५७ की स्वाधीनता युद्ध के पश्चात् पहिला अवसर था जब अग्रेजो द्वारा फूट के बीज सफलतापूर्वक बोने के पश्चात् भी हिन्दू और मुसलमान एक साथ एक प्लेटफार्म पर आगे बढे और उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सत्ता को चुनौती दी।

ब्रिटिश सरकार, जो दो सौ वर्षो से इस पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागो पर अपनी सत्ता जमाए हकूमत कर रही थी, एक बार फिर हिन्दू-मुसलमानो मे फूट डलवा कर आपस मे लडाई और मार-काट कराने मे सफल हो गई। १६२४ मे यह अवस्था थी कि काग्रेस को छोड हिन्दू और मुसलमान एक प्लेटफार्म पर दीख ही नही पडते थे। एक दूसरे का गला काटने के लिए फिरते थे। छोटी-छोटी और साधारण बातो के बतगड बन जाते थे और चाकू-छुरिया चल जाती थी। ऐसे समय जब ब्रिटिश सरकार स्वप्न मे भी नही सोच सकती थी, काग्रेस के असहयोग आन्दोलन के प्लेटफार्म पर नही, फासी के तख्ते पर लटकने वाले प्लेटफार्म पर हिन्दुओ के साथ मुसलमान भी आए। बनारसीदास तथा शिवचरणलाल शर्मा और अन्य देशद्रोहियो द्वारा सरकार काकोरी ट्रेन के लूटने वालो के नामो को प्राप्त कर उनको गिरफ्तारी करने मे समर्थ हो गई। उनमे एक बहादुर मुसलमान भी था, अशफाक उल्लाह खान जिसने वीरता के साथ बिस्मिल, रोशनसिह और राजेन्द्र लाहिरी के साथ इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे लगाते हुए फासी के तख्ते पर लटक वीरगति ही नही बल्कि भारतवासियो के हृदयो मे एक अमर स्थान पा लिया।

काकोरी ट्रेन मे भाग लेने वाले सभी व्यक्ति पकड लिए गए थे। यदि कोई नही पकडे गए थे तो वह थे पण्डित चन्द्रशेखर आजाद और कुन्दनलाल। बहुत प्रयत्न करने पर भी सरकार उनको पकडने मे सफल नहीं हुई और सरकार ने उनके पकडने के लिए ९,०००) रुपए का इनाम घोषित कर दिया।

पण्डित जी काकोरी काण्ड के पश्चात् बनारस लौट गए थे, परन्तु जैसे ही उन्होंने सुना कि काकोरी डकैती के सम्बन्ध मे धर-पकड आरम्भ हो गई तो आजाद और कुन्दलाल बनारस छोड इलाहाबाद मे एक मकान किराये पर लेकर रहने लगे। परन्तु अधिक दिन वे वहा ठहर नहीं सके। कारण था बम्ब के टोपियो का विस्फोट। वहा से आजाद भागी चले गए। वहा वह एक पूर्व परिचित कायस्थ सज्जन मास्टर रुद्रनारायण के यहा ठहरे और उनके अनुज बनकर रहने

लगे। मास्टर रुद्रनारायण से उनका परिचय काकोरी काड से पूर्व शचीन्द्र बख्शी ने करा दिया था। उनकी पत्नी पण्डित जी की भाभी, पण्डित जी और भौजाई मे झगडे भी होने लगे और इन झगडो का मास्टर जी ही फैसला कराते थे। पण्डित जी ने अपने काकोरी केस या अपने विचारो के परिवर्तन के सम्बन्ध मे कुछ भी नही बताया। केवल इतना ही कहा कि धन के अभाव के कारण वह काशी विद्यापीठ मे पढना जारी न रख सके। रुद्रनारायण जी परिस्थित को भली भाति समझ गए थे और जिनको क्रान्तिकारियो से, प्रगाढ प्रेम था, उनको अपने पास रखा और उनको रामानन्द द्वारा मोटर ड्राइवरी भी सिखा दी। पण्डित जी खुल्लमखुल्ला हरिशकर के नाम से कार चलाते फिरते थे और अनेको बार जब वहा के पुलिस सुपरिन्टेन्डन्ट ने कार या ड्राइवर मागा तो पण्डित जी ही जाते थे और अपने ऊपर २,०००) रुपयो का इनाम होते हुए भी बरोक टोक और बिना किसी डर के उसकी गाडी चलाते थे। उनका उद्देश्य नौकरी करने का नही था। वह तो चाहते थे कि एक तो काकोरी काण्ड के सम्बन्ध मे पुलिस की सरगरमिया कम हो जाए जिससे वह क्रान्तिकारी दल को फिर से जुटाने का प्रबन्ध करें। दूसरा पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की मोटर ड्राइवरी से अपने ऊपर किसी प्रकार का सन्देह न होने देना। तीसरा उद्देश्य यह भी था कि अवसर आने पर पुलिस के हथियारो पर अधिकार करना।

इन्ही दिनो उनकी एक अकस्मात घटना से बाई कलाई मे चोट लगी थी और उनका दाया हाथ कुछ अशो मे टेढा हो गया था। यह उस समय हुआ जब मोटर के कारखाने मे काम करते थे। एक दिन किसी एक कार का हैण्डिल काम नही कर रहा था। सभी कारीगर उसको घुमाने मे असफल रहे। पण्डित जी को मानो उनके शारीरिक बल की यह चुनौती थी। उन्होने तीव्र गति से हैण्डिल घुमाया। हैन्डिल उसी गति से उल्टा फिर गया और पण्डित जी की कलाई की हड्डी टूट गई।

आजाद झांसी मे मफरूर अवस्था मे मास्टर रुद्रनारायण की पत्नी और उनके बच्चो के साथ ।

वन प्रस्थान

पण्डित जी मास्टर रुद्रनारायण के पास तीन महीने ही रह पाए थे कि उनको उसका घर ही नहीं बल्कि एक प्रकार से झाँसी भी छोड़नी पड़ी। उन्होंने मुझे जो कारण बताया था, वह ऐसा था। रुद्रनारायण की स्त्री को पण्डित जी भाभी कहकर पुकारते थे। दोनों में देवर भावज का पवित्र प्रेम था और झगड़े भी होते रहते थे। एक दिन कुछ अधिक कहा-सुनी हो गई। पण्डित जी ने भी सोचा कि वह मास्टर जी के पास अधिक दिन ठहर चुके हैं। वह उसी रात रुद्रनारायण को बताए बिना ही घर छोड़ कर समीप के जंगलों में चले गए ओरछा की ओर ढीमरा गाँव में। वैशम्पायन ने इसका कारण कुछ और ही बताया है। उनके कहने के अनुसार रुद्रनारायण जी ने स्वयं ही उनको झाँसी छोड़ने का आग्रह किया क्योंकि उस समय झाँसी में पुलिस की चहल-पहल गर्म हो गई थी। पुलिस के विचार में झाँसी क्रान्तिकारियों का अड्डा था।

मुझे इस कथन में कुछ भ्रम-सा लगता है। काकोरी काण्ड के सम्बन्ध में आजाद और कुन्दनलाल को छोड़ कर सभी क्रान्तिकारी पकड़े जा चुके थे और पुलिस को इतनी जल्दी यह ख्याल भी नहीं हो सकता था कि केवल दो व्यक्ति दल को फिर से इतनी शीघ्रता से जुटाने में लग जायेंगे। पुलिस तो यही समझती होगी कि ये दोनों अपनी जान बचाने के लिये कहीं न कहीं छिपे होंगे।

भीलों के बच्चों के साथ वह भावरा में भी स्कूल में पढ़ चुके थे। आदिवासियों का कुछ तो समझते ही थे। गेरुए कपड़े पहन साधु का वेश धारण कर

वह आदिवासियों के बीच में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने भीलों को तीर-कमान चलाना तथा पिस्तौल चलाना सिखाना आरम्भ किया। साथ ही उनको अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रस्तुत करने का प्रयत्न भी किया। परन्तु एक मास पश्चात् हार मान झांसी की ओर लौटे।

झांसी के समीप ढीमरपुरा गांव के पास एक सातार नदी बहती है। वह नगर के बाहर है परन्तु नगरवासी स्त्री व पुरुष वहीं प्रतिदिन स्नान करने जाते थे। पण्डित जी उसी स्थान पर एक मन्दिर में रहने लगे। नाम धारण किया हरिशंकर विद्यार्थी और रामायण का पाठ करने लगे। साधु वेश में होने के कारण उनको सीधा तो मिल जाता था। परन्तु वह तो इस सोच-विचार में थे कि किस प्रकार क्रान्तिकारी दल को फिर से खड़ा किया जाए। उसके लिए साधन कैसे जुटाए जाए। पण्डित जी को हिन्दी का ज्ञान तो काशी विद्यापीठ में भली प्रकार हो गया था। प्रतिदिन प्रातःकाल ठेठ हिन्दी में घाट पर व्याख्यान देते और उन व्याख्यानों में दासता को दूर करने का मुख्य ध्येय होता था। व्याख्यान सुनने वाला में दो प्रौढ़ा स्त्रियाँ और उनके साथ एक युवती भी प्रायः प्रत्येक दिन होती थी जो व्याख्यान की बजाय पण्डित जी के मुख की ओर अधिक ध्यान से देखती रहती थी।

एक दिन प्रातः समय व्याख्यान के समय से कुछ पहले पण्डित जी नदी में पांव डाल विचार-मग्न थे कि किस प्रकार इस बनावटी जीवन को समाप्त कर अपने असली ध्येय में लगा जाए। पण्डित जी ने आखें मूंद रखी थीं और उनको आस पास के लोगों का भी ध्यान नहीं था। इसी बीच एक पानी में तैरता हुआ सर्प आया। वह पण्डित जी के समीप आया। पण्डित जी के पांव पर भी चढ़ा और फिर पानी में बहता हुआ चला गया। पण्डित जी को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। परन्तु दूसरे स्त्री-पुरुष जो उस समय स्नान करने के लिए मौजूद थे या स्नान कर चुके थे, इस सीन को देख रहे थे। उन्होंने जब देखा कि एक सर्प पण्डित जी को काटने की बजाय उनके चरणस्पर्श करके गया है तो उन्होंने समझा कि पण्डित जी अवश्य कोई पहुँचे हुए सिद्ध साधु हैं। वे पंडित जी के पांव पर गिर साष्टांग प्रणाम करने लगे। पण्डित जी का ध्यान भंग हुआ। वह आश्चर्यचकित हो गए। बातों-बातों में पता चला कि मूल बात क्या थी। हंस दिये। बोलते भी क्या।

इन प्रशंसकों में वे दोनों प्रौढ़ा स्त्रियां और युवती भी थी। उन तीनों ने पण्डित जी से कहा कि वह उनके साथ घर चलें जहां वे उनको एक कमरा

दे देंगी और पण्डित जी उनमे से एक की बेटी युवती को शिक्षा प्रदान करे। पण्डित जी भी उस घाट के जीवन से तंग आ गये थे। उन्होंने उन स्त्रियो का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उस दिन से वह उनके साथ उनके घर जाकर रहने लगे। वैशम्पायन ने इस प्रसग को दूसरी ही प्रकार और विस्तार से लिखा है। सम्भव है वही सत्य है। मैंने तो यहा वही उद्धृत किया है जो आजाद ने मुझे बताया था।

झांसी से प्रस्थान

उन स्त्रियो का मकान नगर से बाहर परन्तु समीप ही था। रहने का भाग तो नीचे था जिसमे वे तीनो स्त्रिया रहती थी और ऊपर एक कमरा था जिसका रास्ता बाहर से था। स्त्रिया किसी अच्छे घराने की थी। शायद क्षत्रिय जाति की थीं। रहन-सहन से पता चलता था कि रुपये का भी अभाव नही था।

पण्डित जी ने दूसरे दिन से उस लडकी को, जिसकी आयु लगभग २०-२१ वर्ष की थी, पढाना आरम्भ कर दिया। पढने का समय १० से १२ तथा शाम सूर्य अस्त होने के बाद तक था। घर मे बिजली नही थी। पण्डित जी के कमरे मे एक लालटेन रख दी गई थी। सुबह-शाम पण्डित जी का भोजन नीचे से बनकर आ जाता था। प्राय वह लडकी ही लाती थी।

अभी छ-सात दिन ही बीते थे कि उन स्त्रियो ने यह मालूम करने के पश्चात् कि पण्डित जी ब्राह्मण कुल के है, उनसे उस लडकी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। पण्डित जी ने उस समय उनके प्रस्ताव को यह कह कर टाल दिया कि वह उस पर विचार करेंगे। उनका अभिप्राय था कि वह किसी प्रकार यहा कुछ दिन और ठहरें और इस बीच मे अपने काकोरी के खोये हुए सूत्रों से फिर भेंट कर आगे का कार्यक्रम निश्चय कर लें। परन्तु ऐसा नही हो पाया।

पण्डित जी ने जब उन स्त्रियो को अपने सकल्प मे दृढ पाया कि वे उनका विवाह उस युवती के साथ करेंगी तो एक दिन रात्रि के नौ बजे के बाद वह स्थान छोड अपना पिस्तौल साथ ले समीप के एक गाँव मे चले गये। वैशम्पायन ने इसी घटना का एक दूसरे रूप मे वर्णन किया है, परन्तु घटना का सार एक ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहा आजाद ने मुझे एक अविवाहित युवती बताई थी वैशम्पायन ने उसको प्रौढा बताया है। वह घर छोड पण्डित जी एक समीप के ठाकुर नम्बरदार के यहा उसके भाई बन कर रहने लगे। उसके अस्त्रों का प्रयोग स्वय भी करते थे और अन्य दल के सदस्यों से भी कराते थे। उस नम्बरदार को उनका असली रूप मालूम था। मागी

छोड़ने से पूर्व उनका सम्बन्ध भगवानदास माहौर तथा सदाशिव राव मलकापुरकर, वैशम्पायन, कुन्दनलाल आदि से हो चुका था।

कानपुर में आगमन

पण्डित जी किस प्रकार झांसी से कानपुर पहुचे, यह ज्ञात नही हो सका। शायद कुन्दनलाल उनको कानपुर ले गये थे जहा उनका परिचय दल के अन्य सदस्यो से कराया गया। उन सदस्यो मे थे, विजयकुमार सिनहा, बटुकेश्वर दत्त, अजय घोष, रामदुलारे त्रिवेदी, सुरेन्द्र पाण्डे, ब्रह्मदत्त, शिव वर्मा, जयदेव कपूर, डा गयाप्रसाद, सद्गुरुदयाल अवस्थी, वीरभद्र तिवारी और गणेशशकर विद्यार्थी से भी कराया गया। यही वह भगतसिंह और सुखदेव से भी मिले। परन्तु उनका कार्यक्षेत्र अब यही नगर हो गया था। वैसे वह झासी भी आते जाते रहे। काकोरी के बिछुडे हुए सूत्र फिर मिल गए थे। उन्ही को पक्का किया और दल के क्षेत्र को बढाते गए। एक ओर नए सदस्य बनाना जारी था, कानपुर मे ही नही, ग्वालियर, झासी, सहारनपुर, देहरादून दिल्ली, इलाहाबाद आदि सभी बडे-बडे नगरो मे नए-नए सदस्य भरती किए जा रहे थे, उनको दूसरे देशों के क्रान्तिकारी दलो के इतिहास की पुस्तकें पढाई जाती थीं। अधिकतर पुस्तकें आयरलैंड पर ही थी। दूसरी ओर चन्दा एकत्रित कर रिवाल्वर और पिस्तौल भी खरीदे जाते थे और उनसे सदस्यो को उनके चलाने की चादमारी का भी अभ्यास कराया जाता था। सदस्य तीन प्रकार के भरती किये जाते थे। पहले वर्ग मे वे होते थे जो अपना पूरा समय दल के कामो मे लगाने के लिए प्रस्तुत होते थे। दूसरे वर्ग मे वे थे जो पूरा समय तो नही दे सकते थे, परन्तु हथेली पर जान रखकर काम करने के लिए झिझकने वाले नही थे। उनके निवास स्थानों को प्राय दल के सदस्यो के ठहराने के लिए काम मे लाया जाता था। तीसरे वर्ग मे वे लोग थे जो मरने-मारने या जेल जाने के लिए प्रस्तुत तो नही थे परन्तु सहानुभूति अवश्य रखते थे। वे लोग केवल थोडे बहुत धन से ही सहायता करते थे। इस प्रकार की सहायता का लगभग सदा ही अभाव रहा।

दल का काम विस्तृत होता ही गया। अजमेर, जयपुर, मेरठ आदि मे केन्द्र खुल गए। पूना के श्री राजगुरु से भी सम्बन्ध स्थापित हो गया। इन सब कामो मे पण्डित जी को कानपुर के श्री गणेशशकर विद्यार्थी, बरेली के सेठ दामोदरस्वरूप, जयपुर के वैद्य पतितनारायण, अजमेर के अर्जुनलाल सेठी, इलाहाबाद के शम्भुनाथ सहगल, कानपुर के रामचन्द्र मुसद्दी, मैनाल बाबू

आदि से पर्याप्त मात्रा मे सहानुभूति तथा सहयोग मिला। कानपुर मे उनका परिचय विजयकुमार सिनहा, शिव वर्मा आदि से भी हो गया था।

इन्ही दिनो लाहौर मे नौजवान भारत सभा भी जोर पकड रही थी। उसमे भगवतीचरण वोहरा, धनवन्तरी, भगतसिंह, सुखदेव, यशपाल, दुर्गादास खन्ना, रणवीर आदि खुले तौर पर व्याख्यानो द्वारा लोगो को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भडकाते थे। एक नेशनल कालिज भी खुल गया था। जयचन्द्र विद्यालकार का पूरा सहयोग इन जोशीले नवयुवको के साथ था। इन नवयुवको को पण्डित जी के क्रान्ति दल के दोबारा सगठित करने का समाचार मिल गया। भगतसिह कानपुर आकर उनसे सम्बन्ध स्थापित कर गए और पजाब मे भी दल का केन्द्र इन नवयुवको की सहायता से खुल गया।

इस प्रकार १६२८ मे पडित जी के अनथक परिश्रम स और भगवतीचरण वोहरा, भगतसिह, सुखदेव, धनवन्तरी, यशपाल (पजाब), शिवदेव वर्मा, जयदेव कपूर, विजयकुमार सिनहा, सुरेन्द्र पाण्डे (यू पी), राजगुरु (पूना), मनीन्द्रनाथ, फणीन्द्रनाथ घोष, जोगेन्द्र शुक्ल और मनमोहन वैनर्जी (बिहार), जतीनदास (वगाल), कुन्दनलाल (राजस्थान), डी वी तिलग (मध्य प्रदेश), काशीराम (दिल्ली) आदि की सहायता से दल का फिर से लगभग सारे ही उत्तर भारत मे सगठन सुचारु रूप से हो गया था। इसका श्रेय केवल पण्डित चन्द्रशेखर आजाद को ही था। अब तक इस दल का नाम था 'हिन्दुस्थान रिपब्लिकन आर्मी'। परन्तु समय वदल रहा था और सगठन भी आर्मी से कही आगे वढ गया था। १६२८ के सितम्बर मे दल की एक बैठक देहली म बुलाई गई। वह बैठक कुदसिया घाट मे हुई। उस बैठक मे सस्था का नाम बदल कर 'हिन्दुस्थान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन तथा आर्मी' रखा गया और पण्डित जी को कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त किया गया। इस देहली की बैठक मे भाग लिया था, भगतसिह, सुखदेव, विजयकुमार सिनहा, शिव वर्मा, सुरेन्द्र पाण्डे, ब्रह्मदत्त मिश्र, कुन्दनलाल, जयदेव कपूर, फणीन्द्र घोष, मनमोहन वैनरजी आदि ने। दल के नाम से समाजवाद का शब्द जोडने के लिए भगतसिह ने आग्रह किया था। इसी बैठक मे दल ने एक केन्द्रीय समिति भी बनाई थी। जिसमे पजाब से भगतसिह तथा सुखदेव, उत्तर प्रदेश से विजय कुमार सिनहा, तथा कुन्दनलाल, बिहार मे फणीन्द्रनाथ घोष और राजस्थान से कुन्दनलाल को लिया गया था। आजाद तो कमाण्डर-इन-चीफ के नाते सर्व विद्यमान थे ही।

इस प्रकार दल के केन्द्र भी जगह-जगह पर खुल गए और सदस्य भी

बन गए। परन्तु उनके काम के लिए हथियार नही थे और हथियार बिना रुपए के खरीदे नही जा सकते थे। दल के लगभग सभी सदस्य पूरे समय दल के काम मे सलग्न थे। आर्थिक सहायता देने वाले बहुत ही अल्प सख्या मे थे। दल मे रुपए का अभाव था। इस अभाव को कुछ सीमा तक पूरा करने के लिए, या कहिए कि द. के काम को यथा-शक्ति चालू रखने के लिए पण्डित जी ने निश्चय किया कि दल के एक सदस्य का उपयोग किया जाए। यह सदस्य था कैलाशपति जो उस समय आजमगढ के पोस्ट आफिस मे मनीआर्डर आदि का काम देखता था, उससे कहा गया कि वह किसी एक दिन मनीआर्डर का सारा रुपया ले फरार हो जाए और रुपया पण्डित जी को कानपुर लाकर दे दे। कैलाशपति एक दिन वी पी. और मनीआर्डर से प्राप्त ३,२००) रुपए लेकर चलता बना। इस रकम मे से उसने ५००) रुपए तो अपने माता-पिता को भिजवा दिए जो गरीब थे और शेष रुपया पण्डित जी को समर्पित कर दिया। इस २,७००) रुपए से कुछ तो रिवाल्वर, पिस्तौल और कारतूस खरीदे गए और शेष दल के सदस्यो के रहने के प्रबन्ध मे व्यय हो गया।

रुपया थोडा था, कुछ काम नही बना। पण्डित जी ने कानपुर मे फिर भी कुली बाजार मे रघुबरदयाल के मकान मे एक बम फैक्ट्री खोल दी जिसमे शिवचरण को बम के बनाने के लिए नियुक्त किया। बम के खोल बनने लगे। उनका मसाला तथा पिक्रिक एसिड का बनाना जतीन्द्रनाथ दास ने सिखा दिया।

साइमन कमीशन का आगमन

भारत मे अग्रेजो के विरुद्ध प्रजा का जोश बढता जा रहा था। काग्रेस, मुसलिम लीग, जमीयतउल उलेमा हिन्द, अहरार, लाल कमीज आदि सभी सगठन अग्रेजो के विरोध मे प्रचार कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने देखने मे तो आसू पोछने के लिए परन्तु यथार्थ मे हिन्दू मुसलमानो मे फूट बढाने के लिए एक कमीशन भारत मे भेजा जिसके अध्यक्ष लार्ड साइमन थे। उस कमीशन के सदस्यो मे एक भी भारतीय नही था और न ही उसके उद्देश्यो से कोई भी भारत की सियासी पार्टी सहमत थी। सभी पार्टिया उस कमीशन का विरोध कर रही थी। पण्डित जी ने सोचा कि यदि भारत के क्रातिकारी लार्ड साइमन को किसी प्रकार मारने मे सफल हो जाए तो भारत की सभी सियासी पार्टियो की सहानुभूति क्रान्तिकारी पार्टी को प्राप्त हो जाएगी। भगत सिंह ने इसकी चर्चा देहली के केन्द्र कमिटी मे पहले ही कर दी थी और सभी सदस्य उससे सहमत थे।

पण्डित जी ने यथोचित प्रबन्ध लार्ड साइमन के मारने के लिए किए, परन्तु अभी लार्ड साहब की आयु पूरी नही हुई थी। सभी प्रबन्ध असफल रहे। कानपुर की फैक्ट्री मे तैयार किए गए बम लेकर तीन व्यक्ति मनमोहन गुप्त, मारकण्डेय तथा एक अन्य दक्षिण की ओर भेजे गए। लार्ड साइमन की गाडी उस ओर से जाने वाली थी। योजनानुसार वे दोनो उस रेलवे लाइन को साइमन की गाडी के गुजरने से कुछ ही क्षण पहले बम से उडा देने वाले थे। परन्तु दुर्भाग्यवश दोनो बम गाडी के डब्बे मे ही फूट गए और वह डब्बा दो क्रान्तिकारियो सहित नष्ट हो गया। मनमोहन घायल हो गए परन्तु बच गए।

भगवानदास और सदाशिव को पण्डित जी ने बम्बई की ओर भेजा, राजगुरू से पूना मे मिलने के लिये। परन्तु वे भी भुसावल स्टेशन पर पकड लिए गए, परन्तु पकडे जाने से पहले उन्होंने दिल खोलकर पुलिस का मुकाबला किया। वे दोनो रेलवे यार्ड मे इस प्रकार घिर गये थे कि लडते हुए मरने या पकडे जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नही था।

अभी काकोरी षड्यन्त्र के सम्बन्ध मे अधिक समय नही बीता था। केवल दो सदस्यो के अतिरिक्त लगभग सभी सक्रिय सदस्य पकडे जा चुके थे। आजाद ने भी उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् कुछ दिन तो अज्ञातवास मे चुप बैठ कर ही बिताये थे। फिर भी उनकी लगन थी कि निकल पडे और सक्रिय सदस्यो की सख्या बढने लगी। यह केवल उनकी ही लगन न थी। उस समय के युवको मे यदि उतनी ही तीव्र लगन न होती तो सफल कैसे होते। युवको मे जोश था देश को स्वाधीन करने का और उसी स्वाधीनता के युद्ध मे लडते-लडते अपने को बलिदान कर देने का। वे आगे आते थे। आजाद उन्हे सदस्य बना, उचित शिक्षा दे उनको किसी न किसी काम मे लगा देते थे। वे भयकर से भयकर काम की पर्वाह न कर आगे बढते थे और मर जाते थे या पकडे जाते थे।

प्रत्येक गिरफ्तारी आजाद को एक आघात लगती थी। मानो उनके शरीर का कोई भाग उनसे विरक्त हो गया। उन्हे दुख होता था। कई-कई दिन उदास रहते थे परन्तु फिर कमर कस आगे बढ जाते थे। यह उन्ही के परिश्रम का फल था कि बहुत थोडे दिनो मे और कितने ही सदस्यो के मर जाने या पकडे जाने के बावजूद भी उन्होने दतिया, गनियाधाना, भोपाल, जयपुर, अजमेर, देहली, कानपुर आगरा, ग्वालियर, झांसी ललगढा आदि मे केन्द्र स्थापित कर दिये थे और उनमे से कुछ केन्द्रो मे शस्त्र बनाने की शिक्षा तथा अभ्यास का भी प्रबन्ध कर दिया था। यह थी आजाद की अनन्त प्रतिभा।

लाला लाजपतराय की मृत्यु

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुचा तो वहा की जनता ने एक विराट जुलूस उसके विरोध मे निकाला। इस जुलूस का प्रबन्ध भगवतीचरण और भगतसिंह ने नौजवान भारत सभा द्वारा किया था। उस जुलूस का नेतृत्व लाला लाजपतराय कर रहे थे। लाला जी उस समय पजाब के सबसे बडे काग्रेसी राजनैतिक नेता थे। और सभी दल, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान या ईसाई उनका सम्मान करते थे। ब्रिटिश सरकार भी उनका यथोचित आदर करती थी। लाला जी काग्रेस के बडे नेताओ मे से एक थे, परन्तु वह उग्रदल के नेता समझे जाते थे।

यह जुलूस जब स्टेशन के समीप पहुचा तो स्थानीय पुलिस कर्मचारियो ने उनको वैसा ही एक सबक सिखाना चाहा जैसाकि उनके पूर्वज जनरल डायर ने ११ वर्ष पहले भारतीयो को जलियावालाबाग मे दिया था। पुलिस जानती थी कि लाला लाजपतराय उस विराट समूह के नेता थे। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट स्काट ने एसिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट को आज्ञा दी कि वह लाठी चलाकर समूह को तितर बितर कर दे। कहा जाता है कि उसने यह सकेत विशेषकर लाला जी की ओर किया था। साण्डर्स ने समूह पर लाठी चलाते हुए लाला जी के भी तीन लाठिया मारी। लाला जी के शरीर पर इन लाठियो के निशान उनके अन्तिम समय तक थे। नवम्बर १९२८ मे यह निशान उन्होने स्वय मुझे दिल्ली म डाक्टर अन्सारी की कोठी पर दिखाए थे।

हो सकता है लाठियो से लाला जी को शारीरिक अधिक चोट न लगी हो। परन्तु मानसिक चोट तो अकथनीय थी। ठीक है प्रजा की अग्रजो से लडाई चल रही थी। रोज कही न कही गोली चलने या लाठी मारने की वार-दाते होती थी परन्तु लोग स्वप्न मे भी नही सोच सकते थे कि ब्रिटिश सरकार इतनी क्रूर है कि वह एक अखिल भारतीय सम्मानित नेता को भी लाठिया मारेगी। लाला जी तो इस मानसिक तथा शारीरिक आघात का अधिक न सह १७ नवम्बर १९२८ को परलोक सिधार गए और अपने पीछे लोगो मे एक क्रोध की ज्वाला छोड गए। लाला जी की बेइज्जती ने जलती हुई अग्नि पर, जो उनके लाठी लगने से सारे भारत मे पैदा हो गई थी, तेल के छिडकने का काम किया। अनेको काग्रेसी नेताओ से उस समय यह सुनने मे आता था कि क्रान्ति-कारियो को लाला जी पर लाठिया मारने का बदला अवश्य लेना चाहिए। वे स्वय तो ले नही सकते थे क्योकि अहिंसा मे जो विश्वास था और महात्मा

गाधी कभी भी बदले के भाव की आज्ञा नहीं देते। इसलिए छिपे तौर पर कहते-फिरते थे और विशेषकर पजाब मे तो लगभग हरएक के मुख से बदले की भावना के विचार निकलते ही थे। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

लाला जी के मृत्यु के पश्चात् लाहौर मे एक शोक-सभा हुई। उस सभा मे श्रीमती बसन्तीदेवी, धर्मपत्नी स्वर्गीय चित्तरजनदास (कलकत्ता) ने कहा था : "लाला जी की चिता ठडी होने के पूर्व देश का कोई युवक खून का बदला लेगा"। याद रहे चित्तरजनदास बगाल तथा भारत के एक उच्च काग्रेस के नेता थे और काग्रेस के प्रधान भी रह चुके थे। इसी प्रकार उनकी धर्मपत्नी भी कुछ समय के लिए काग्रेस की प्रधान रही थीं।

जब युवक क्रान्तिकारी लड़ते-लड़ते मारे जाते थे या फासी के तख्ते पर लटकते थे तो काग्रेस के नेताओं के उद्गार उनके अपने तक ही सीमित रहते थे। किसी ने ठीक कहा है।

जिसकी न फटी पीर बवाई,
वह क्या जाने पीर पराई।

साण्डर्स वध

पण्डित जी ऐसे सुअवसर को हाथ से निकल जाने देने वाले नही थे। उनके लिए तो मानो बिल्ली के भागो छीका टूटा था। वह सीधे लाहौर पहुचे और भगवतीचरण, सुखदेव तथा भगतसिह से मिले। उनसे मिलकर स्काट की हत्या का प्रबन्ध आरम्भ कर दिया। राजगुरू को भी लाहौर बुला लिया।

उस समय तक पजाब मे कितने ही युवक दल के सदस्य बन चुके थे। सुखदेव पजाब के सगठनकर्ता नियुक्त किये गये थे। परन्तु भारत के अन्य स्थानों की भाति यहा भी दल को रुपये का अभाव था और एक्शन के लिए आवश्यकता थी रुपये की। प्रत्येक सदस्य को एक आने से लेकर चार आने रोज़ मिलते थे जिससे उनको दोनो समय का भोजन, दूधादि का खर्चा चलाना पडता था। भगतसिह को चित्रपट का शौक था। वह दो-तीन दिन तक एक समय खाना न खा पैसे बचा कर या तो अण्डे खा लिया करता था या सिनेमा देखा करता था।

पडित जी ने लाहौर जाकर धन सचय का और कोई साधन न देख पजाब नेशनल बैंक की लाहौर की एक शाखा को लूटने की योजना बनाई, यह योजना भगतसिह ने उनको सुझाई थी। अपने स्वभावानुसार उन्होंने एक्शन के प्रत्येक छोटे से छोटे काम को किसी न किसी को सौप दिया करते थे परन्तु अब स्वय उस एक्शन का नेतृत्व करने वाले थे। उस एक्शन मे भाग लेने वाले थे, चन्द्र-शेखर'आजाद, कैलशपति, भगतसिह, कुन्दनलाल, राजगुरू, रणवीरसिह, सुखदेव, हसराज, जयगोपाल और किशोरीलाल। एक्शन की पहली सध्या मे वह और

भगतसिंह एक अंग्रेजी चित्र टाम काका का केबिन देखने गये। उस चित्र में भी एक बैंक का डाका दिखाया गया था। पंडित जी ने भगतसिंह का हाथ दबाया और कहा, "ज़रा ध्यान से देख लो, कल हम सबको भी ऐसा ही करना है।"

एक्शन का समय आया। सभी अपने-अपने स्थान पर खडे प्रस्तुत थे। केवल टैक्सी का इन्तजार था। बिना टैक्सी के रुपया नही ले जाया जा सकता था और टैक्सी आई ही नही। एक्शन करना उचित नही था इसलिए स्थगित कर दिया गया और फिर एक के बाद एक कुछ ऐसी बातें हुईं कि उस एक्शन का अवसर ही नही आया।

टैक्सी न आने का कारण था कि टैक्सी मिली ही नही थी। स्मरण रहे उन दिनो घोडा गाडियो का रिवाज था कारें कम थी और टैक्सिया तो बहुत ही कम थी।

धन के अभाव को कुछ सीमा तक भगवतीचरण और दुर्गा भाभी ने दूर किया जिससे स्काट के विरुद्ध एक्शन न रुके। विचार था कि यदि स्काट की हत्या सफलतापूर्वक हो जाय तो लोगो से धन एकत्रित करने मे सुविधा होगी और साथ ही दल के कार्य मे भी बढावा मिलेगा।

पुलिस का आफिस जहा स्काट बैठता था. बहावलपुर रोड की एक कोठी मे था। पण्डित जी ने जयगोपाल को स्काट को पहचानने तथा उसके आने-जाने के समय को नोट करने के लिए नियुक्त किया। एक सप्ताह पश्चात् जयगोपाल ने बताया कि वह स्काट को पहचानता है और उसके दफ्तर मे आने-जाने के समय भी नोट कर लिए हैं। पण्डित जी ने एक्शन का पूरा ब्यौरा तैयार कर सबको उनके काम समझा दिये। जयगोपाल का काम था स्काट को बताकर रफ़ूचक्कर हो जाना। भगतसिंह को स्काट पर गोली चलाना था। राजगुरू को आवश्यकता पडने पर भगतसिंह की मदद करनी थी और पण्डित जी ने स्वय उन दोनो की रक्षा सभाल ली थी।

दल के पास तीन साइकिलें लाई गई। जो डी० ए० वी० कालेज होस्टल के अन्दर के अहाते मे रखी गईं। एक्शन हो जाने के पश्चात् तीनो क्रान्तिकारी साइकलो पर बैठ मोज़ग के मकान मे चले जाने वाले थे।

१७ सितम्बर १९२८ को चारो साथी निश्चित समय पर जब प्राय: स्काट आफिस से बाहर जाया करता था, वहा पहुच गए। तीनो साइकिलें डी० ए० वी० कालिज के होस्टल के अहाते के अन्दर रख दी गईं। अहाते के चारो ओर एक छै फुटी दीवार थी। उस दीवार के साथ बहावलपुर रोड की ओर

एक तीन फुट गहरी दो फुट चौडी नाली खुदी हुई थी। चारो साथियो को थोडा ही समय वहा पहुँचे हुए हुआ था कि एक अग्रेज आफिस से निकल सीढियो से नीचे उतरा। जयगोपाल ने घबराहट मे भलीभाति उसको न पहचान उसकी ओर सकेत कर दिया और स्वय होस्टल की चारदीवारी के अन्दर जा आदेश के विरुद्ध तीन साइकिलो मे से एक साइकिल ले चलता बना। इधर जब वह अग्रेज बाहर आ मोटर साइकिल को स्टार्ट करने लगा तो भगतसिह को पिस्टल निकालने मे कुछ विलम्ब हुआ। राजगुरू ने देखा कि अमूल्य समय बीता जा रहा है और शायद चिडिया हाथ से निकल जाए। वह आगे बढा और उस अग्रेज को अपनी गोली का निशाना बनाया। भगतसिह भी तब तक सभल गया था। उसने भी तीन चार गोलिया उस पर दाग दी। दोनो उस अग्रेज को पृथ्वी पर गिरते देख होस्टल की चार दीवारी फादने के लिए पीछे लौटे। उतनी देर मे एक और सफद चमडी वाला व्यक्ति उनकी ओर पिस्तौल लिए लपका। पण्डित जी ने उसको आते देख उसको खबरदार किया और उसके न रुकने पर उसकी ओर परन्तु उसके ऊपर नही, एक गोली चलाई। वह व्यक्ति जो इन्स्पेक्टर फर्न था, चोट न लगते हुए भी उस तीन फुटी नाली मे लेट गया जैसे मानो उसको गोली लग गई थी। कुछ क्षण ही बाद एक भारतीय वर्दीपोश सिपाही भगतसिह और राजगुरू की ओर रिवाल्वर लिए हुए दौडा। पण्डित जी ने उसको आता देख ऊचे स्वर से कहा 'रुक जाओ वरना मारे जाओगे।' वह बढता ही गया और पण्डित जी को लाचारीवश उस पर गोली चलानी पडी। वह एक ही गोली म ढेर हो गया। दरअसल पण्डित जी ने उसको दो बार चेतावनी दी थी। इस व्यक्ति का नाम था चाननसिह जो पुलिस का सब इन्स्पेक्टर था।

अब पण्डित जी ने भी होस्टल की दीवार फादी और अन्दर राजगुरू और भगतसिह से जा मिले। वहा दो ही साइकिलें देख पण्डित जी एक पर सवार हो गए और दूसरी राजगुरू ने चलानी आरम्भ की। उसके पीछे कीले पर भगतसिह खडा हो गया। पुलिस के लोगो ने भी उनका पीछा करना नही छोडा था। शोर मचाते जा रहे थे 'पकडो, पकडो, चोर है, डाकू है, हत्यारे है" आदि। एक साइकिल पर दो सवार होने के कारण उनकी गति तेज न हो पाती थी और पीछा करने वाले लोग भी कुछ समीप आते जा रहे थे। रास्ते मे एक साइकिल की दुकान आई। वहा भगतसिह ने एक साइकिल खडी हुई देखी। समीप आते ही वह राजगुरु की साइकिल से कूद उस खडी हुई साइकिल

पर सवार हो तीनो चलते बने। वह साइकिल दुकान का मालिक भी 'पकडो, पकडो, चोर, चोर' कहता हुआ दूसरे पीछा करने वाले समूह मे शामिल हो गया। परन्तु अब यह नौजवान तीन साइकिलो पर सवार थे अब इनको पकडना सुलभ नही था। जब पीछा करने वाले लोग आखो से ओझल हुए तो तीनो एक खेत मे घुस कर दूसरी ओर निकल गए और फिर अपने स्थान मोजग पर पहुँच गए।

इस प्रकार दल ने लाला लाजपतराय की मानहानि का बदला ब्रिटिश सरकार के एक एजेण्ट साण्डर्स से लेकर लोगो के उबलते हुए जोश और क्रोध को कुछ शान्ति दी और आम जनता को गर्व के साथ सिर उठाने का अवसर दिया।

पुलिस की आंखों में धूल

साण्डर्स के वध से केवल लाहौर या पंजाब में ही नहीं समस्त भारत में सनसनी फैल गई। लाहौर में तो पुलिस और सी. आई. डी. ने शहर को चारों ओर से घेर नाके-नाके पर रोक लगा दी। चलते फिरते पुरुषों की तलाशियां लेने लगे। अनेक गिरफ्तारियां भी अन्धाधुन्ध की। परन्तु एक्शन लेने वालों को पकड़ने में असफल रहे।

१८ सितम्बर को साण्डर्स के वध के दूसरे दिन सारे नगर में सी. आई. डी. की आंखों में धूल झोंक एक लाल परचा बांटा गया जिसमें लिखा था कि साण्डर्स को मारकर क्रान्तिकारी दल ने लाला लाजपतराय की मानहानि का बदला लिया है और साथ ही ब्रिटिश साम्राज्य को चेतावनी भी दी है।

पण्डित जी के सन्मुख अब एक जटिल समस्या थी, राजगुरू, भगतसिंह और अपने आपको लाहौर में सी. आई. डी. के विस्तृत जाल में से बाहर निकालना परन्तु एक्शन के समय तथा उसके पश्चात् उनका दिमाग अति तीव्र गति से काम करता था। वह योजना बनाने और उसको पूरा करने में खूब चतुर थे। तरकीब सोच ही डाली।

भगवतीचरण बाहरा तथा दुर्गा भाभी का वर्णन पहले आ चुका है। भगवतीचरण थे तो गुजराती परिवार के परन्तु उनके पिता रेलवे में लाहौर में काम करते थे। भगवतीचरण का जन्म लाहौर ही में हुआ था। वह हर प्रकार से पंजाबी ही लगते थे। भगवतीचरण भी *नेशनल कालिज के विद्यार्थी* थे। वहां क्रान्ति का अध्ययन उन्हें जयचन्द्र विद्यालंकार से मिला था। एक समय

भगवतीचरण वोहरा, दुर्गा भाभी और उनका चार वर्षीय बालक शचि

भगवतीचरण ने किसी छोटे से एक्शन की एक योजना बना उसको जयचन्द्र जी के सामने रखा। जयचन्द्र जी ने तुरन्त ही उसको ठुकरा दिया और भगवतीचरण को सी. आई. डी की सर्विस मे होना घोषित कर दिया। उस समय के पश्चात् जयचन्द्र का प्रभाव नवयुवको पर से उठ गया था। पण्डित जी को जयचन्द्र जी की इस क्रिया पर सदा ही दुख तथा रोष होता रहा। फिर भी वह जयचन्द्र जी का जिक्र मान के साथ करते थे क्योकि उन्होने, पजाब के नवयुवको को क्रान्ति की ओर उत्तेजित किया था।

भगवतीचरण का विवाह दुर्गादेवी से हो चुका था। उनके एक पुत्र भी था जो उस समय लगभग चार-पाच साल का था। उसका नाम था शचि वोहरा। भगवतीचरण के विरुद्ध पुलिस का वारण्ट था वह तो प्राय घर से बाहर रहते थे परन्तु दुर्गा भाभी अपने पुत्र के साथ उस मकान मे रहती थी। वह भी दल के कार्यों मे यथोचित भाग लेती रहती थी। परन्तु अभी पुलिस के सन्देह से बाहर थी। साण्डर्स वध के समय भगवतीचरण कलकत्ते मे थे।

पण्डित जी ने दुर्गा भाभी से मिलकर अपने तथा राजगुरु और भगतसिंह के लाहौर से बाहर जाने की योजना पक्की कर ली। भाभी ने फिर एक बार पण्डित जी को ५००) रुपये उस योजना को पूरा करने के लिए दिये।

हत्या के तीसरे-चौथे दिन लाहौर रेलवे स्टेशन पर एक सुन्दर युवक और एक सुन्दर युवती एव चार वर्षीय बालक के साथ गाडी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे बैठे। उनके साथ एक नौकर बहरे के वेश मे था जो साथ ही के थर्ड क्लास के डिब्बे मे बैठा था परन्तु बार-बार आकर उस 'दम्पत्ति' को सलाम भाडता था और उनकी आवश्यकताए पूरी करता था। उसी गाडी के एक थर्ड क्लास के डब्बे मे एक सण्ड-मुसण्ड साधु, शरीर पर भभूत मले रामनौमी का दुपट्टा गले मे डाले परतु सर मुडे, हाथ मे कमडल लिये बैठा हुआ दिखाई दिया। जब दम्पति स्टेशन पर पहुचे तो उन्होने उन साधु को प्रणाम किया और कुछ दक्षिणा दी। दम्पति को छोडने कुछ अन्य पुरुष तथा स्त्रिया भी आई थी। उन्होंने भी उन साधु महात्मा को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद लिया। स्टेशन पर सी. आई. डी का जोर था। उसका एक इन्सपेक्टर यह सब देख रहा था। उसने कुछ लोगो से पूछा जिन्होंने ना मालूम होते हुए भी उन साधु को पहुचा हुआ महात्मा बताया। इन्सपेक्टर भी उनके पास गया और उनसे अपने काम मे सफलता मिलने की दुआ मागी। साधु ने कहा, 'होगी' परन्तु कुछ सुलफे के लिए दक्षिणा अवश्य देनी होगी। इन्सपेक्टर ने चार आने जेब मे निकाल कर उनको दे दिये।

पाठकों को ज्ञात हो ही गया होगा कि यह सब व्यक्ति कौन थे। 'दम्पति' के रूप में थे भगतसिंह (जिसने साण्डर्स एक्शन के पश्चात् अपने केश कटवा लिए थे) और दुर्गा भाभी तथा उनके साथ उनका लडका था और साधु के वेश में और कोई नही स्वय पण्डित जी ही थे। राजगुरु दम्पति का नौकर बनकर लाहौर छोड रहा था।

इस प्रकार पण्डित जी, भगतसिंह और राजगुरू को अपने साथ ले पुलिस तथा सी० आई० डी० की आखो मे धूल झोंक लाहौर से बाहर चले गये। पुलिस हाथ पर हाथ धरे बैठी रह गई। हा उन्होंने डी ए वी स्कूल के अध्यापक को जो वारदात के समय होस्टल मे पाया गया था, खूब मारा, परन्तु उस वीर से पुलिस को मारने वालो का कोई सुराग नही मिला। जब लाहौर षड्यन्त्र केस चल रहा था जिसमे भगतसिंह और राजगुरू आदि अभियुक्त थे पुलिस ने उस अध्यापक को पकडकर फिर मारा और प्रयत्न किया कि वह उन दोनों को पहचान ले परन्तु उसने पहचानने से इन्कार कर दिया। काश, उस अध्यापक का नाम मालूम होता तो मैं अपनी श्रद्धाजलि उसका नाम लेकर उसको भेंट करता। पण्डित जी ने कई बार उस वीर अध्यापक की तारीफ मेरे सामने की थी।

बम के कारखाने

लाहौर से बाहर निकल पण्डित जी तो आगरा आ गए और फिर झासी चले गये भगतसिंह तथा भाभी दोना कलकत्ते चले गए। वहा सुशीला-देवी जो जालन्धर कन्या महाविद्यालय की स्नातिका थी, एक मारवाडी परिवार की किसी एक लडकी को पढाती थी। यह लोग कलकत्ते मे उन्ही के पास ठहरे। सुशीला जी का पार्टी नाम दीदी था। वहा भगतसिंह यतीन्द्रनाथ दास से भी मिला जिसने उसको तथा फणीन्द्रनाथ घोष, कमलनाथ तिवारी और विजय-कुमार सिनहा को गनकाटन बनाना सिखाया था।

इस समय आगरे में एक केन्द्र खुला हुआ था। वे लोग कलकत्ते से आगरे आए, जहा पण्डित जी और भगवतीचरण भी आ मिले। यहा बमो के खोल बनाए गये और यतीन्द्रनाथ दास की सहायता से पिक्रिक ऐसिड भी तैयार किया गया। लाहौर से सुखदेव और कुन्दनलाल आये ,और यह सब क्रियाए सीख कर लौट गए। गनकाटन कलकत्ते मे तैयार करके लाया गया था—बम बनाने या मसाला तैयार करने के अतिरिक्त क्रान्तिकारियो के इतिहास भी पढे गये और आपस मे विचार-विमर्श, तर्क-वितर्क आदि भी चलते रहे। साथ ही

पण्डित जी सभी सदस्यो को एक-एक, दो-दो करके बुन्देलखण्ड की खाडियो मे पिस्तौल, रिवालवर और राइफल के चलाने का अभ्यास भी कराते रहे।

यहा यह बताना अनुचित न होगा कि पडित जी सदैव की भाति स्त्रियो के नाम से चिढते थे। वह कहते थे कि जिन लोगो ने अपने जीवन अपनी हथेलियो मे रखे है, उनको स्त्रियो की ओर ध्यान ही नही देना चाहिए। वह अपने विचारो मे कहा तक सही थे, इसी से प्रमाणित हो जाता है कि एक वर्ष पश्चात् केवल दो-तीन स्त्रियो के परिचय से ही दल मे फूट पड गई थी, दल के कई सदस्य अपने उद्देश्य से गिर गए थे और यशपाल को तो गोली मार देने तक का निश्चय किया गया था।

फिर भी दल मे लाहौर मे भाभी और दीदी और कानपुर मे श्री देवी मुसद्दी जैसी स्त्रियो से उन्हे घृणा नही थी। वह उनका आदर करते थे और उनसे यथासमय दल का काम निकालते थे।

यह वह समय था जबकि काकोरी षड्यन्त्र केस के पश्चात् पहली बार और उस समय से भी कही अधिक व्यापक दल का सगठन भारत के लगभग पूरे उत्तरी भाग मे विस्तृत हो गया था; केवल पण्डित जी के प्रयत्न से। पजाब, दिल्ली, राजस्थान, यू० पी०, आधुनिक मध्य प्रदेश, बिहार आदि मे दल के केन्द्र खोल दिए गए थे और सगठनकर्ता नियुक्त कर दिए गए थे। बगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तो मे भी दल का काम आरम्भ हो गया था। पण्डित जी का प्रयत्न था कि समस्त भारतवर्ष मे जगह-जगह केन्द्र खोल कर एक ही दिन सभी स्थानो पर एक ही प्रकार का एक्शन किया जाए जिससे अंग्रेज सरकार को क्रान्तिकारियो की शक्ति और उनके आन्दोलन की व्यापकता प्रतीत हो जाए।

इस समय आगरा सेण्ट्रल जेल मे काकोरी अभियोग मे आजन्म कारावास दण्डित श्री जोगेश चटर्जी सजा काट रहे थे। पण्डित जी को उनके प्रति बडी श्रद्धा थी। पण्डित जी ने उनसे सम्पर्क बनाया और उनके छुडाने की योजना तैयार की। परन्तु जब शिव वर्मा और विजयकुमार सिनहा जोगेश दा से मिले तो पुलिस को उन पर सन्देह हो गया और जोगेश दा का तबादला आगरा जेल से निश्चित समय से पहले ही कर दिया गया और इस प्रकार उनके छुडाने की योजना असफल रही। जोगेश दा को जेल से छुडाने का ब्यौरा श्री बटुकेश्वर दत्त ने मुझे इस प्रकार बताया

क्रान्तिकारी दल को ज्ञात हुआ कि जेल के अधिकारी जोगेश दा को आगरा जेल से लखनऊ जेल शीघ्र ही ले जाने वाले हैं। आज़ाद की तैयार की

हुई योजना के अनुसार उनको जव सशस्त्र पुलिस आगरे स्टेशन पर गाडी मे विठाने लाती तो उस समय पुलिस पर धावा वोल जोगेश दा को बचा कर ले जाते। बटुकेश्वर दत्त का काम था स्टेशन पर खड़े रहकर जोगेश दा का आना देखना और उनके आते ही दल को सूचित कर देना। बटुकेश्वर दत्त स्टेशन पर पठान का पहनावा पहन जोगेश दा की प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन जोगेश दा गाडी के छूटने से कुछ ही मिनट पहिले लाये गए और गाडी दत्त के देखते-देखते छूट गई।

दत्त ने आकर दल के नेताओ को यह बताया। पण्डित जी दल के सदस्यो को ले सीधे कानपुर चले गए। वहा जोगेश दा स्टेशन के पुलिस लौकअप मे थे। सोचा पुलिस के लौकअप से उनको बचाने मे कई जानें जायेंगी। यही निश्चय हुआ कि जब उनको रेलगाडी से ले जाया जाय तो गंगापार गाडी को रोक उनको बचा लिया जाये। दत्त को साइकिल लिये गगा के पुल पर खडा रहने के लिए आर्डर मिला। वह वहा नियत समय पर पहुच गया। गाडी आई और चली गई परन्तु न पण्डित जी थे और न ही दल के अन्य सदस्य। जब दत्त कानपुर स्टेशन पहुचा तो देखा कि पण्डित जी और भगतसिंह मे वाद-विवाद हो रहा है। कारण का पता नही चल सका।

वैशम्पायन के अनुसार यह एक्शन दो कारणो वश रोकना पडा था। एक था आजाद की जेब कट जाना जिसमे उनके ५०) रुपये निकल गए थे। दूसरा कारण था कानपुर मे जोगेश दा को छुडा कर सुरक्षित स्थान पर रखने का अभाव। तीसरा कारण यह भी था कि पुलिस की अधिकता, विशेष प्रबन्ध और दल के बहुत थोडे सदस्य।

इससे पहले भी फतहगढ जेल से उनको छुडाने का कार्य भी असफल ही रहा था और जोगेश दा कांग्रेस के शासन आने के पश्चात् ही १९३७ मे बाहर आ सके!

आगरे के केन्द्र का काम समाप्त होने के पश्चात् उस केन्द्र को बन्द कर दिया गया और उसके स्थान पर दिल्ली मे केन्द्र बनाया गया। शिव वर्मा ने सहारनपुर मे और लाहौर मे सुखदेव ने बम बनाने की फैक्टरिया चालू कर दी। मसाला आगरे से तैयार किया हुआ उनको पहुचाया गया। यही मसाला कानपुर की बम फैक्टरियो मे भी भेजा जा रहा था। पूरे तैयार किए हुए बमो की परीक्षा, झासी के जगलो मे, दिल्ली के खण्डहरो और कानपुर से कुछ दूर जगलो मे की गई और सभी बम परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। यही के तैयार किये

हुए बम लार्ड साइमन को मारने के लिए भेजे गये थे परन्तु ट्रेन में अकस्मात् फट जाने के कारण ट्रेन का डब्बा ही उड गया था और दो क्रान्तिकारी मारे गए थे और एक बुरी तरह घायल हो गया था।

दल का कार्य पण्डित जी के अनथक परिश्रम से दिनोदिन बढता जा रहा था। पजाब मे सुखदेव ने बहुत से सदस्य बना लिए थे। दिल्ली मे काशीराम और कैलाशपति दल के भार को सभाले हुए थे। यू० पी० मे वीरभद्र तिवारी दल का दायरा बढाता जा रहा था। उस समय सी० पी० (आधुनिक मध्यप्रदेश) मे भानुप्रताप, डी० वी० तैलग, पोद्दार, बिहार मे फणीन्द्रनाथ घोष और बम्बई मे राजगुरु आदि दल की शक्ति बढाने मे सलग्न थे। राजस्थान मे अर्जुनलाल सेठी, शक्तिनारायण शुक्ला, रुद्रदत्त और मदनगोपाल दल के काम मे यत्नशील थे। पण्डित जी स्वय इन सब केन्द्रो का दौरा लगाते रहते थे और सगठन को सुचारु रूप से सभाल रहे थे। इस काम मे भगवतीचरण उनके दाए हाथ थे और वैशम्पायन पण्डित जी के सन्देश भिन्न-भिन्न केन्द्रो के नेताओ को पहुचाता रहता था।

एक ओर जहा दल का काम बढता जा रहा था, सदस्यो की सख्या मे भी वृद्धि हो रही थी और केन्द्र भी विस्तृत होते जा रहे थे, दूसरी ओर धन का अभाव और भी अधिक प्रतीत होने लगा था। साण्डर्स वध से कुछ स्थिति बदली थी परन्तु इतनी मात्रा मे नही कि जिससे दल के प्रत्येक दिन के बढते हुए काम का खर्च चल सके। उस समय पण्डित जी को भगवतीचरण, भगतसिंह, यशपाल आदि ने समझाया कि दल को फिर से एक गुना एक्शन करना चाहिए जिससे आम जनता का ध्यान उनकी ओर अधिक आकर्षित हो। यह आवश्यक हो गया था क्योकि दल के कई सदस्य, शिव वर्मा, जयदेव कपूर आदि बगैर किसी एक्शन के ही सहारनपुर मे पकडे जा चुके थे।

दिल्ली असेम्बली बम कांड

मार्च १९२९ मे आगरे मे दल की एक विशेष सभा हुई जिसमे दल के लगभग सभी नेता और कई सदस्य सम्मिलित हुए। उन दिनो असम्बली मे सरकार की ओर से दो बिल रखे गए थे, एक था (Trade Disputes Act) औद्योगिक विवाद कानून और दूसरा (Public Safety Bill) सार्वजनिक सुरक्षा कानून। इन दोनों कानूनो का अभिप्राय था जनता की स्वतन्त्रता की भावना को कुचलना और उसके असन्तोष को दवाना। इन दोनो कानूनो का विरोध समस्त भारतवर्ष कर रहा था। असेम्बली मे सरकारी अफसर और उनके पिट्ठुओं को छोड सभी सदस्य उनके विरुद्ध थे।

क्रान्तिदल की केन्द्रीय कमिटी ने यह सुझाव पास किया कि जिस समय जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यो के घोर विरोध के होते हुए भी सरकार उन दोनो बिलो को पास हुआ घोषित करे उसी समय असेम्बली मे बम फेंका जाए और सारे देश में भली भाति उससे लाभ उठाया जाए। केन्द्रीय कमिटी के सामने सबसे बडा प्रश्न था कि यह काम कौन करे। उस समय तक पण्डित जी के विरुद्ध सरकार ने उनके पकडे जाने के लिए अनेक इनाम घोषित कर दिए थे। बीसियों आदमियो को उनको पहचानने और पकड़वाने मे सहायता देने के लिए अपनी नौकरी मे रख लिया था। उनमे से कुछ तो उनको पहचानते थे परंतु अधिकतर सरकार को धोखा दे अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। भारत के किसी कोने मे भी कोई क्रान्तिकारी छोटा या बडा एक्शन हो, उससे पण्डित जी का नाम सबंधित होता था। आम जनता मे पण्डित जी के नाम के प्रति श्रद्धा दिनोदिन बढती जा

रही थी। पण्डित जी ने सोचा यदि वह स्वय असेम्बली का एक्शन करे और एक्शन के बाद या तो निकल जाए या लडते हुए वही मारे जाए तो उससे दल को जनता की सहायता तथा सहानुभूति पर्याप्त मात्रा मे मिल जाएगी। परन्तु जब उन्होने अपने आपको उस मीटिंग मे इस एक्शन के लिए पेश किया तो एक भी सदस्य उनसे सहमत नही हुआ। सभी जानते थे कि रामप्रसाद बिस्मल के पकडे जाने के पश्चात् दल को दोबारा खडा करने का सौभाग्य पण्डित जी को ही प्राप्त था और वह ही दल की आत्मा तथा शरीर (रूह और कालिब) थे। अन्य कितने ही सदस्यो ने भी अपने को आगे रखा। परन्तु अन्त मे भगतसिंह ने अपने आपको अधिक ज़ोर के साथ पेश किया।

भगतसिंह को अपने आपको पेश करने के पीछे एक भेद था। वह इस प्रकार था : भगतसिंह साण्डर्स वध के बाद लगभग पजाब के बाहर ही रहा था। वह अधिकतर पण्डित जी के साथ यू० पी० मे ही दल का काम कर रहा था। कई बार पजाब भी हो आया था, परन्तु वहा अधिक देर ठहरा नही था। उसका अधिक समय भिन्न-भिन्न देशो के क्रान्तिकारियो के इतिहासो के पढने मे व्यतीत होता था। एक बार वह पण्डित जी के कहने पर पण्डित मोतीलाल नेहरू से भी मिला था परन्तु आर्थिक सहायता मागने पर नेहरू जी ने उस समय उसे दुत्कार दिया था। इस बात का पण्डित चन्द्रशेखर को बहुत दुख हुआ था। उधर पजाब मे सुखदेव का कार्यक्षेत्र विस्तृत होता जा रहा था। उसको भगतसिंह का पजाब से बाहर रहना और वहा भी उसका चुप बैठे रहना भाया नही। उसने उस केन्द्रीय दल की सभा मे भगतसिंह को एक ओर ले जाकर बहुत बुरा-भला कहा और कायर बताया। भगतसिंह ने सुखदेव की बातो को बडी गम्भीरता से सुना। उसको अत्यन्त दुख हुआ और उसने अपने आपको दल के सामने असेम्बली मे बम फेंकने के लिए पेश किया और दल को उसके आत्म-बलिदान करने के प्रस्ताव को मजूरी देने के लिए मजबूर कर दिया। पण्डित जी भी नही चाहते थे कि भगतसिंह उस कार्य को करे। उनको उस पर पूर्ण विश्वास था और उससे दल के अनेक कामो तथा एक्शनो मे भाग लेने की आशाए थी। वह तो चाहते थे कि असेम्बली मे बम फेंक कर केवल अग्रेजी सरकार को अपने दल का बल प्रमाणित कर दें और साथ ही जनता की सहानुभूति दल को प्राप्त हो जाए।

परन्तु भगतसिंह के आग्रह के पश्चात् उनको उसके आत्म-बलिदान के लिए स्वीकृति देनी ही पडी। भगतसिंह अकेला ही जाना चाहता था परन्तु

बटुकेश्वरदत्त ने जो यू० पी० मे ही दल के सगठन मे व्यस्त था, उसका साथ देने पर जोर दिया और भगतसिंह तथा दत्त को दल ने स्वीकृति दे दी।

योजना पण्डित जी ने बनाई जो इस प्रकार थी दल के छै सदस्य, पण्डित जी, भगवतीचरण, सुखदेव, वैशम्पायन, भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त असेम्बली मे जाएगे। असेम्बली के बाहर दल की मोटरकार खडी रहेगी। (यह कार कुछ दिन पहले ही खरीद ली गई थी) सकेत करने पर भगतसिंह और दत्त को छोड चारो अन्य साथी बाहर आ जाएगे और पण्डित जी कार स्टार्ट कर तैयार रहेगे। चारों साथी रिवाल्वरो से लैस होगे। इन साथियो के असेम्बली गैलरी से बाहर निकलने के पाच मिनट बाद भगतसिंह हाल मे बम फेंकेगा। केवल दत्त के ही पास पिस्तौल था। बम फेंकने के पश्चात् दत्त उस समय के होम मेम्बर सर जेम्स करार को गोली मारेगा और उस गडबड में यदि अवसर मिला तो दोनो लडते-लडते बाहर निकल आएगे जहा कार उनकी प्रतीक्षा मे खडी होगी और फिर वे सब वहा से निकल जाएगे। हा यदि भगतसिंह और दत्त को बाहर निकलने का अवसर न मिले तो वही लडते हुए अपने जीवन का बलिदान कर देंगे।

इस सम्बन्ध मे मैंने बटुकेश्वर दत्त से भी पूछा, उस समय जब वह कैन्सर के रोग से पीडित देहली के एक हस्पताल मे चिकित्सा करा रहा था।

उसने बताया कि वह दल की केन्द्रीय समिति मे उपस्थित नही था जब असेम्बली मे बम फेंकने का निश्चय हुआ था। परन्तु जब वह भगतसिंह के साथ असेम्बली मे गया था तो न तो उसके पास कोई रिवाल्वर ही था और न ही उन दोनो के बम फेंकने के पश्चात् बाहर जाने का कोई फैसला। इससे यही प्रत्यक्ष है कि आजाद का उन दोनो के बचाने का सुझाव केन्द्रीय समिति ने मजूर नही किया था।

दल के इस एक्शन का अभिप्राय था काले बिलो का विरोध तथा असेम्बली मे परचे फैंक कर जनता तथा ससार के सन्मुख यह बताना कि जनता और विशेषकर क्रान्तिकारी सरकार की दमन नीति को चुप बैठ कर नही देख सकते और कांग्रेसी नेताओ को यह जताना कि सरकार वैधानिक तरीको से उनके देश को कभी स्वाधीन नही करने देगी।

इस काण्ड से पहले पण्डित जी और भगतसिंह ने भगवतीचरण के साथ असेम्बली मे छोडे जाने वाले एक बम की परीक्षा तुगलकाबाद के खण्डहरो मे कर ली थी।

७ अप्रैल को काशीराम ने मेरे द्वारा असेम्बली के चार प्रवेश-पत्रो का प्रबध कर लिया था। उस समय मैं एम० ए० की परीक्षा देने वाला था और जमना किनारे कुदसिया घाट मे मे रामसरूप घी वाले घाट के एक कमरे मे रहता था। वहा लगभग हर दिन के० सी० राय आते थे जो उस समय के एसोसिएटेड प्रेस के चीफ थे। वह मेरे मित्र हो गए थे और कई बार अपनी कोठी पर ले जाते थे। वह असेम्बली के सदस्य थे। मैंने उनसे ही चार प्रवेश-पत्रो का प्रबन्ध किया था। बम काण्ड के एकदम बाद वह अपनी कार मे सीधे मेरे पास आए और बम काण्ड का वर्णन कर मुझ से पूछा कि कही मैंने उनके द्वारा दिए गए प्रवेश-पत्र उन क्रान्तिकारियो को तो नही दिए थे। मैंने उनको आश्वासन दिलाया कि मैं किसी क्रान्तिकारी को नही जानता और उनको मेरे द्वारा कोई आपत्ति नही होगी। इस आश्वासन के पश्चात् वह उन दोनो क्रान्तिकारियो की प्रशसा करने लगे और मैं उत्सुक बना सुनता रहा। मेरे आश्वासन देने का कारण था, वह दल का निश्चय कि जब दल के अन्य सदस्य असेम्बली से बाहर आएगे तब सभी प्रवेश-पत्रो को नष्ट कर देंगे।

बटुकेश्वर दत्त ने पूछने पर बताया कि जब आगरे मे दल की बैठक मे भगतसिह और उसको असेम्बली मे बम फेकने का निश्चय किया था उस समय उनको बाहर लाने की कोई बात नही हुई थी। उनका काम तो केवल बम्ब फेक कर दल के पत्र को मेम्बरो के बीच विस्तृत करना था उसके पश्चात् आत्म-समर्पण। पकड जाने के पश्चात् अभियोग का सहारा ले अधिक से अधिक दल के उद्देश्यो का प्रचार करना था।

हो सकता है आगरे मे ऐसा ही निश्चय हुआ हो और बाद मे पण्डित जी ने उनको बाहर ले आने की योजना भी बना ली हो।

दत्त ने यह भी बताया कि उसके पास रिवाल्वर नही था।

८ अप्रैल १९२९ को छ मे से चार सदस्य तो पब्लिक गैलरी के मध्य मे बैठे। भगतसिह और दत्त बाईं ओर के कोने के पास जाकर आगे की सीटो पर बैठे। ठीक उनके नीचे सरकारी आफिसर बैठे हुए थे। सकेत पाने पर पण्डित जी, भगवतीचरण, सुखदेव और वैशम्पायन बाहर निकल आए और कार को स्टार्ट कर उसमे बैठ गए। उधर भगतसिह ने पाच मिनट बाद असेम्बली मे सरकारी आफिसरो के समीप बम फेंका और दोनो ज़ोर से चिल्लाए "इन्कलाब जिन्दाबाद," "साम्राज्यवाद का नाश हो," "दुनिया के

मजदूरो एक हो जाओ," "एच एम आर ए जिन्दाबाद"। साथ ही उन्होंने लाल पर्चे हॉल मे फेंके जो हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के कमाण्डर-इन-चीफ बलराज के नाम से छपे थे। यह कमाण्डर इन-चीफ और कोई नही, पण्डित चन्द्रशेखर आजाद ही थे। उन पर्चों का आशय इस प्रकार था "बहरों को सुनाने के लिए विस्फोट के बहुत ऊंचे शब्द की आवश्यकता होती है।"

"पिछले दस वर्षों मे ब्रिटिश सरकार द्वारा शासन सुधार के नाम पर इस देश का अपमान करने की कहानिया दुहराने की आवश्यकता नही है और न ही हिन्दुस्तानी असेम्बली पुकारी जाने वाली इस सभा द्वारा हिन्दुस्तानी राष्ट्र के सिर पर पत्थर फेंक-फेंक कर हमारा अपमान करने के उदाहरणो को याद दिलाने की आवश्यकता है। यह सब सुपरिचित और स्पष्ट है। आज फिर जबकि जनता साइमन कमीशन से कुछ सुधारो के टुकडो की आशा मे आखें फैलाए है और इन टुकडो के लोभ मे आपस मे भगडा कर रही है, विदेशी सरकार सार्वजनिक सुरक्षा और औद्योगिक विवाद कानूनो के रूप मे अपने दमन को और भी कडा कर देने का यत्न कर रही है। इसके साथ ही आने वाले अधिवेशन मे समाचारपत्रो द्वारा राजद्रोह रोकने के कानून जनता पर थोप देने की धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करने वाले मजदूर नेताओ की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारिया यह स्पष्ट कर देती है कि सरकार की विचारधारा क्या है।

'राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति मे अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता अनुभव करके हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सघ ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाए। विदेशी शोषक नौकरशाही जो चाहे करें। परन्तु उसके वैधानिकता का नकाब फाड देना आवश्यक है।

जनता के प्रतिनिधियो से हमारा आग्रह है कि वह इस असेम्बली के पाखण्ड को छोडकर अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रो मे लौट जाए और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बता देना चाहते है कि हम देश की जनता की ओर से सार्वजनिक सुरक्षा और औद्योगिक विवादो के दमनकारी कानूनो और लाला लाजपतराय की हत्या के विरोध म यह कदम उठा रह हैं।

'हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते है। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य

मे विश्वास रखते हैं जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम मानव रक्त के बहाने और अपनी विवशता के लिए दुखी है, परन्तु क्रान्ति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने के लिए क्रान्ति मे कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

'इन्कलाब ज़िन्दाबाद !' "

ह० बलराज
कमाण्डर-इन-चीफ

बम के फटते ही सरकारी आफिसर अपनी-अपनी मेज़ो के नीचे छिप गए। सर जेम्स क्रेरार भी, जो उस समय गृह मेम्बर था, मेज के नीचे छिप गया। परन्तु पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा अन्य काग्रेसी सदस्य अपने-अपने स्थानो पर वैसे ही बैठे रहे। पण्डित मोतीलाल नेहरू के मुख पर तो मुस्कराहट थी। भगतसिह और दत्त वही पकडे गये और पण्डित जी अपने अन्य साथियो के साथ पाच-सात मिनट के पश्चात् वहा से बाहर चले गये।

भगतसिह और दत्त दोनो पर मुकदमा चला। उन दोनो ने भरसक क्रान्तिकारी दल के उद्देश्या का प्रचार करने का प्रयत्न किया। दोनो को आजीवन कारावास दे दिया गया।

जनवरी १६३० मे जब भगतसिह तथा दत्त की अपील हाई कोर्ट, लाहौर मे हुई, तो भगतसिह ने एक वक्तव्य दिया जिसमे कहा था—"हमे जो दण्ड दिया गया है उसके विषय मे हमे कोई आपत्ति नही है। हम यदि कोई आपत्ति है तो हत्यारे कहे जाने पर। क्रान्ति का विरोध करने वाले लोग केवल बम, पिस्तौल, तलवार और रक्तपात को ही क्रान्ति का नाम दे देते हैं परन्तु क्रान्ति इतने मे ही सीमित नही है। यह सब क्रान्ति के उपकरण हो सकते है परन्तु इनके उपयोग के पीछे होती है समाज की आर्थिक और राजनैतिक स्थिति बदलने की जन भावना। हमारी आज की परिस्थितियो मे क्रान्ति का उद्देश्य कुछ व्यक्तियों का रक्तपात करना मात्र नही है बल्कि उसका उद्देश्य है, मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा को समाप्त करना तथा इस देश के भविष्य के लिए आत्म-निर्णय के अधिकार को प्राप्त करना।"

यह तो विदित ही है कि भगतसिह तथा दत्त ने अपनी इच्छा से असेम्बली मे जाकर बम फेंका था। यदि वे इच्छा प्रकट करते तो उनको स्थल

से बाहर निकाल ले जाने की व्यवस्था भी थी। परन्तु उन्होने तो एक उद्देश्य को लेकर अपनी आहुति देने का निश्चय किया था। वह उद्देश्य था जनता के सामने क्रान्तिकारियो का असली रूप रखना, उनमे जागृति उत्पन्न करना, क्रान्तिकारी दल के प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना और ब्रिटिश सरकार तथा उनके पिट्ठुओं को यह डके की चोट पर बताना कि क्रान्तिकारी केवल मार-पीट मे ही विश्वास नही रखते, वे तो एक विशेष उद्देश्य को लेकर हथेलियो पर जान रखकर आगे बढे है और वे ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति के सामने झुकने वाले नही है।

इसी उद्देश्य से उन्होने हाईकोर्ट मे अपील की थी जिससे कि क्रान्तिकारी दल के उद्देश्यो के प्रचार करने मे उनको एक और अवसर मिल जाये। उन्होने अपने छूटने के लिए अपील नही की थी।

असेम्बली बम काण्ड के पश्चात् भगतसिंह और दत्त के साथ लिये हुए फोटो केवल दिल्ली मे ही नही अपितु समस्त भारत मे बाँटे गये थे। जनता के हृदयो मे उनकी वीरता की झलक दिखाई देने लगी थी। दोनो का नाम गर्व के साथ लिया जाने लगा था। युवको मे भी कुछ जोश नजर आने लगा था। परन्तु इससे दल को कोई अधिक लाभ नही पहुँचा था। आर्थिक दशा तो वैसी ही बनी रही थी।

परन्तु समस्त भारत मे भगत दत्त के फोटो के प्रचार ने सरकार को चौकन्ना अवश्य कर दिया था। प्रत्येक पुलिस एक्शन और धर-पकड के पश्चात् वे सोचते थे कि क्रान्ति दल समाप्त हो गया, परन्तु थोडे ही दिनो मे उनका यह भ्रम दूर हो जाता था।

पुलिस अभी साण्डस की हत्या की समस्या को हल करने भी नही पाई थी कि असेम्बली मे बम फेंका गया। पुलिस को सन्देह था कि साण्डर्स की हत्या मे भगतसिंह का हाथ था। पुलिस के बयान के अनुसार भगतसिंह के पास जो रिवाल्वर असेम्बली मे पकडा गया था पुलिस के विशेष जाँचकारो ने बताया कि यही रिवाल्वर साण्डर्स की हत्या के समय काम मे लाया गया था।

कथन मे कहा तक सत्यता है मैं नही कह सकता, ऐसा वैशम्पायन ने कहा है। परन्तु मुझे तो दत्त ने अपनी मृत्यु से कुछ दिन ही पहले बताया था कि रिवाल्वर या पिस्टल न तो उनके पास था और न ही भगतसिंह के पास, जब वे दोनो पकडे गये थे।

अपितु पुलिस लाहौर मे विशेषकर सतर्क हो गई और उसने युवको तथा सन्दिग्ध स्थानो की निगरानी बढा दी। उस विशेष निगरानी का फल उनको शीघ्र ही मिल गया।

नवयुवको मे कुछ जोश भी बढा, परन्तु दल की आर्थिक स्थिति जहा की तहा बनी रही और दल का एक समझदार, सुशिक्षित और तल्लीन होकर काम करने वाला साथी भी खो गया। परन्तु पण्डित जी तो लोहे के बने हुए थे। ऐसे आघात पहले भी सहन कर चुके थे। वह फिर से दल को यथाशक्ति शक्तिशाली बनाने के काम मे जुट गए।

लाहौर मे सुखदेव, भगवतीचरण, धनवन्तरी और यशपाल तथा अनेको अन्य साथियो के साथ बम का मसाला बनाने मे जुटा हुआ था। दिल्ली मे कैलाशपति लगभग २० सदस्य बनाने मे सफल होकर उनको शूटिंग की प्रैक्टिस दे रहा था। काशीराम उसको पूर्णरूप मे सहयोग दे रहा था। यू पी को पण्डित जी ने अपना हेडक्वार्टर बना रखा था, परन्तु वीरभद्र तिवारी सचालक था। *मुन्नीलाल अवस्थी, कैलाशनाथ, राजेन्द्रदत्त निगम, रामचन्द्र मुसद्दी आदि से पूर्ण* सहयोग प्राप्त था। भानुप्रताप और पोद्दार मध्य भारत को सम्भाले थे। यू० पी० मे वीरेन्द्र और सुरेन्द्र पाण्डे, सालिगराम शुक्ल, विजयकुमार सिनहा, अजयकुमार घोष, सत्गुरदयाल अवस्थी सारे प्रदेश मे घूम-घूम कर दल के सगठन की जडें मजबूत कर रहे थे। अनेक नए सदस्य बना लिए गये थे। जिन लोगो को घर छोडने पडे थे उनके लिए सुरक्षित स्थानो का प्रबन्ध किया गया था और उनकी आत्मरक्षा के लिए पिस्तौल या रिवाल्वर दे दिए गए थे। उधर पण्डित जी हथियारो के एकत्रित करने मे जुट थे और साथ ही उन्होने दल के सदस्यो की शूटिंग-प्रैक्टिस का भी प्रबन्ध कर दिया था। बुलन्दशहर जिले के नलगढा गाव मे रामचन्द्र शर्मा ने एक फार्म लिया हुआ था। वहा पण्डित जी स्वय भी जाते थे और अन्य सदस्यो को भी शूटिंग-प्रैक्टिस कराते थे।

कानपुर मे बमो के खोल बनाने की फैक्टरी चालू थी।

लाहौर मे सुखदेव ने किला गूजरसिंह मे एक कमरा किराए पर ले लिया था। यहा पिक्रिक एसिड बनाया जाता था। पिक्रिक एसिड पीला होता है और केवल हाथ ही पीले नही कर देता, जहा से इसका धोया हुआ पानी बहता है उस स्थान को भी पीला कर देता है। उस कमरे से बाहर बहने वाली नाली पीली पड चुकी थी और उसमे मे पिक्रिक एसिड की गन्ध भी आने लगी थी।

परन्तु इस ओर सुखदेव या अन्य किसी सदस्य का ध्यान नही गया। गया तो केवल सी० आई० डी० के जासूसो का। उन्होंने अप्रैल १६२६ मे एक दिन उस कमरे पर धावा बोल दिया। उस समय सुखदेव और जयगोपाल वहा मौजूद थे। दोनों ही पकड लिए गए। साथ ही पिकरिक एसिड और उसके बनाने का सामान भी पकडा गया। इस प्रकार सी० आई० डी० क्रान्ति दल का सुराग लगाने मे सफल हो गई।

लाहौर का पहला षड्यंत्र केस

सुखदेव और जयगोपाल को सी० आई० डी० ने लाहौर किले की कोठरियो मे बन्द कर उन को अमानुषिक कष्ट देने आरम्भ कर दिए। दुर्भाग्यवश सुखदेव, जिसके एक ताने के कहने से भगतसिह ने अपने आपको अग्नि मे झोक दिया था, स्वय ठोस प्रमाणित नही हुआ। वह पुलिस के कष्टो को सहन न कर सका या किसी और कारणवश उसने पुलिस को पजाब क्रान्तिकारी दल के सभी भेद बताने आरम्भ कर दिए। केवल पजाब के ही नही, जहा-जहा के पते उसे मालूम थे, उसने पुलिस को बता दिए। पजाब के तो लगभग सभी साथी पकड लिए गए। परन्तु धनवन्तरी, भगवतीचरण, यशपाल, भाभी और दीदी दिल्ली आ जाने के कारण बच गए। पण्डित जी उस समय भासी मे अड्डा जमाये हुए थे। वह पता सुखदेव को मालूम नही था, इसलिए पुलिस उन तक नही पहुच सकी। सुखदेव के बयानो पर फणीन्द्रनाथ घोप अपनी सुसराल कलकत्ता मे पकडा गया। उसने भी सुखदेव का ही मार्ग अपनाने मे भलाई समझी। पुलिस को तो मानो सोने की चिडिया या खुल सिमसिम हाथ लग गया। उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि फणीन्द्र अब आजाद को अवश्य पकडवा देगा और फणीन्द्र ने उनके पकडवाने मे कोई कसर भी नही उठा रखी। वह पुलिस को झासी ले गया और उसको उस मकान तक पहुचा दिया जहा आजाद ठहरे हुए थे। परन्तु उसके भाग्य मे आजाद को पकडवाने पर घोषित किया जाने वाला इनाम नही लिखा था। आजाद भासी मे होते हुए भी उस समय उस मकान मे नही थे और जब पुलिस से घिरे हुए मकान पर

आजाद जाने लगे तो किसी एक व्यक्ति ने उनको बता दिया कि पुलिस फणीन्द्र दादा के साथ उस मकान में विद्यमान है।

आजाद तो भगवानदास माहौर, शिव वर्मा और वैशम्पायन को लेकर ग्वालियर चले गये, परन्तु पुलिस ने आजाद के अनेक पहचानने वालो को गिरफ्तार कर लिया, कुछ को मुखबिर भी बना लिया और कुछ को भविष्य में आजाद को पहचानने के लिए नौकरिया भी दे दी। परन्तु आजाद को पकड़ने मे वह कभी सफल न हुई।

ग्वालियर चले तो गये परन्तु पैसे के अभाव से कई-कई दिन फाके करने पडे। मकान का किराया नही दिया, हलवाई का हिसाब नही चुकाया। परन्तु वह हलवाई भी कोई एक विरला देशप्रेमी था। जब उसको इनके क्रातिकारी होने का पता चल गया तो उसने केवल उनसे पैसे ही नही लिए बल्कि पुलिस को भी किसी प्रकार की जानकारी देने से इन्कार कर दिया। (वैशम्पायन)

ग्वालियर मे ये सब गजानन पोद्दार के साथ ठहरे थे जो कालिज का विद्यार्थी था। वह देहली षड्यन्त्र केस मे मेरे साथ अभियुक्त था, परन्तु कुछ मसाला न मिलने पर अन्त मे छोड दिया गया था। परन्तु अन्य साथी जिनका पता सुखदेव को मालूम था, पकड़ लिए गए। वे सभी लाहौर ले जाए गए। जयगोपाल ने आरम्भ मे तो कोई भी बयान देने से इन्कार कर दिया था, परन्तु जब पुलिस ने उसके सामने उसके नेता सुखदेव का दिया हुआ बयान रखा तो उसने भी बयान दे दिए। इस प्रकार पजाब पुलिस को जो साण्डर्स की हत्या का पता चलाने मे अभी तक असमर्थ रही थी, अब उसके मारने वालो का तथा उसके पीछे षड्यन्त्र का पूरा भेद मालूम हो गया और इसके साथ ही साण्डर्स हत्या, दिल्ली असेम्बली मे बम्ब का फेंका जाना और अन्य घटनाओ का पूर्ण पारस्परिक सम्बन्ध भी मिल गया। दिल्ली से भगतसिंह तथा दत्त को, जिनको आजीवन कारावास हो चुका था, लाहौर ले जाया गया जहा उनको सेन्ट्रल जेल मे रखा गया। अन्य अभियुक्तो को बोर्स्टल जेल मे रखा गया।

पण्डित जी को, जिन्होने अनेक कठिनाइयो से यह भानुमति का कुनबा जोडा था, इन अनेको साथियो के पकडे जाने से बहुत बडा आघात लगा। दल सुखदेव के पकडे जाने से पहले भली प्रकार सुसगठित हो गया था। बडे-बडे नगरो के सेण्टर सुचारु रूप से काम चला रहे थे। सदस्यो की गणना दिनोदिन बढती जा रही थी। हथियार तथा बमो की सख्या भी बढ रही थी। पण्डित जी ने एक योजना बनाई थी जिसके अनुसार एक निश्चित दिन निश्चित समय

पर भारत के वडे-वडे नगरो मे एक ही साथ कोई ऐसा एक्शन करने वाले थे जिससे अग्रेजो तथा भारतवासियो को दल की शक्ति तथा व्यापकता का ज्ञान हो जाए। परन्तु सुखदेव के भण्डा-फोड ने उस योजना पर पानी ही फेर दिया।

परन्तु पण्डित जी ने हार मानना तो जीवन मे सीखा ही नही था। उन्होने फिर से, वचे-खुचे सदस्यो को इधर से उधर किया। उनके निवास स्थान तथा नगर भी वदले। ठहरने के स्थान भी एकदम वदल दिए गए। साथ ही अभियुक्तो के मुकदमे की सफाई का प्रवन्ध धनवन्तरी और भगवतीचरण को सौंपा। इस बीच वह कई बार लाहौर भी हो आए। यह ज्ञात होते हुए भी कि सुखदेव और जयगोपाल ने उनका पूरा हुलिया पुलिस को वता दिया था, वह निडर हो लाहौर के चक्कर लगाते रहे। अपने पकडे जाने का उनको कतिपय भी भय नही था। वह तो सदैव पुलिस से लडने के लिए प्रस्तुत रहते थे। जेव मे भरा हुआ पिस्तौल और एक भरी हुई मेगजीन सदा ही उनके साथ रहती थी, जिसको समय आने पर निकाल कर प्रयोग करने मे क्षण भर की भी देरी नही होती। पण्डित जी लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्तो की सफाई का प्रवन्ध कर फिर से दल के रहे-सहे सदस्यो को बटोर कर दल के सगठन मे सलग्न हो गए, अव वह दिल्ली और पजाव मे अधिक आने-जाने लगे। यू० पी० मे भी काम की गति वढा दी गई। ग्वालियर मे वम वनाने का मसाला अधिक मात्रा मे तैयार होने लगा। देहली और पजाव मे पुलिस की सरगर्मी देख आजाद ने अन्य प्रान्तो की ओर ध्यान दिया। यही से इस समय उन्होने भगवानदास और सदाशिव को वम्बई की ओर भेजा जब वे दोनो लडते हुए भुसावल स्टेशन के यार्ड मे पकडे गये। इसका वर्णन पहले ही आ चुका है। वे दोनो पूना मे राजगुरू से मिलने जा रहे थे।

जब लाहौर के सम्बन्ध मे काफी धर-पकड हो चुकी थी तो आजाद ने फिर करवट ली। ग्वालियर छोड कानपुर आ पहुचे जहा उन्होने वीरभद्र तिवारी, सतगुरदयाल अवस्थी, मन्नीलाल पाण्डे, विश्वनाथ पाण्डे, हमीदखा, कैलाश द्विवेदी, रामचन्द्र जेल यात्री, राजेन्द्र निगम, नारायणदास, रामचन्द्र मुसद्दी, रामभरोसे और गुलजारीलाल से सम्पर्क बढाये और नये सम्पर्कों मे डा जवाहरलाल रोहतगी, नारायणप्रसाद अरोडा, प्यारेलाल अग्रवाल, गगासहाय चौबे, प्रिंसिपल खन्ना आदि भी थे।

इन सब सम्पर्कों मे लगभग सभी ने पण्डित जी का अन्त समय तक यथोचित साथ दिया, सहायता की। फिर भी रामचन्द्र और उनकी पत्नी तथा

श्री मुरारी का स्थान विशेष है। उनके घर को तो आजाद ने अपना ही नही अपने कितने ही साथियो का घर बना लिया था। एक ओर काग्रेसी और फिर आर्थिक अवस्था भी अधिक अच्छी नही, फिर भी उस दम्पत्ति ने दल की सेवा मे कोई कसर उठा नही रखी।

उधर वीरभद्र का सम्पर्क उनके लिए घातक ही सिद्ध हुआ। इसका विवरण आगे तथा परिशिष्ट मे मिलेगा।

लाहौर मे पहला षड्यन्त्र केस चालू हो गया। भगतसिंह तथा दत्त तो दिल्ली असेम्बली बम काण्ड मे प्रख्यात हो चुके थे। लाहौर केस मे उनको सम्मिलित करने से पण्डित जी, भगवतीचरण तथा धनवन्तरी को सफाई के प्रबन्ध करने मे कठिनाई का सामना नही करना पडा। जनता की ओर से कमेटी बनाई गई उसी ने लोगो से धन एकत्रित कर माने हुए वकीलो को सफाई के पक्ष मे नियुक्त किया। य वकील यद्यपि ब्रिटिश सरकार के विरोधी नही थे परन्तु उनकी सहानुभूति देश की स्वाधीनता प्राप्त करने वाले लडाको के साथ थी। इस सहानुभूति का यह लाभ हुआ कि धनवन्तरी और भगवतीचरण को जेल मे बन्द अभियुक्तो से पत्रो द्वारा विचार-परामर्श तथा पैगाम लाने-लेजाने की सुविधा मिल गई।

पण्डित जी कुछ ही महीनो मे दल को फिर से एक बार सगठित करने मे सफल हो गए और दल के सामने शीघ्र ही कोई एक्शन करने का प्रश्न आया। क्रान्ति दल का काम जैसा कि स्पष्ट है छिपे तौर पर होता था। उसमे नवयुवक भावना से प्रेरित होकर आते थे। यह नवयुवक दृढ सकल्प के नही होते थे। आरम्भ मे तो वे दल मे आते थे या तो किसी प्रख्यात क्रान्तिकारी का दर्शन करने, रिवाल्वर या पिस्तौल को देखने। यह दल के नेता का कर्त्तव्य था कि शनै -शनै उनकी इस क्षणिक भावुकता को उनके स्वाधीनता की लडाई लडने के लिए दृढ सकल्प मे बदल। इस अभिप्राय से नवयुवको को स्वाधीनता की लडाई पर लिखी हुई पुस्तकें पढाई जाती थी। उनको लेक्चर भी दिए जाते थे और शारीरिक एव मानसिक बल प्राप्त करने पर विशेष ध्यान दिया जाता था। नेताओ को आदेश था कि वे प्रत्येक सदस्य के आचरण पर पूरा ध्यान रखें। पण्डित जी ने मुझे एक बार बताया था कि जिस समय दल के अनेक सदस्य आगरे मे एक मकान मे रहते थे और गनकाटन तथा पिकरिक ऐसिड बनाते थे, एक दिन भगतसिंह तथा राजगुरू मे बातो-बातो म कुछ मजाक हुआ। पण्डित जी को पता चलन पर उन्होंने राजगुरू को डाट

डपट की और कहा कि यदि वह इस प्रकार के मजाक करेगा तो पण्डित जी उसको दल से बाहर निकाल देंगे। राजगुरू को बहुत दुख हुआ और प्रायश्चित में उसने अपना बाया हाथ गरम तवे पर रख दिया और उस समय तक नही उठाया जब तक पण्डित जी ने उसका हाथ पकड कर तवे से नही खीचा। इसी बात को भाई वैशम्पायन ने इस प्रकार बताया है·"एक दिन राजगुरू और एक अन्य साथी रोटी बना रहे थे। राजगुरू रोटी सेक रहे थे, उनके हाथ में चिमटा तथा सडासी थी, रोटिया सेकते-सेकते उन्होने सडासी आग मे रख दी और जब गरम हो गई तो उस गरम सडासी से छाती पर तीन बार दाग लिया। पास बैठे साथी कुछ कहे उसके पूर्व ही सारी क्रिया समाप्त हो चुकी...मेरे पूछने पर उन्होने कहा कुछ नही, देख रहा था कि पुलिस टॉर्चर से विचलित तो नही हो जाऊंगा।

आजाद उस रात्रि जब बाहर से लौटे तो राजगुरु की हरकत सुनकर उनसे पूछा कि उसने ऐसा क्यो किया। उत्तर दिया, यह देखने के लिए कि यदि पुलिस उन्हे दागे तो उससे कितनी तकलीफ होगी और उसे वह सहन कर सकेगा या नहीं।..."

नवयुवको के आचरण बनाने और उनको पूरा क्रान्तिकारी बनाने मे समय की आवश्यकता थी। परन्तु यह भी अनुभव की बात है कि यदि कुछ समय तक कोई एक्शन नही किया जाए तो दल के कामो मे शिथिलता आ जाती है और सदस्य इधर-उधर बहकने लगते है। यह भी देखा गया है कि कभी-कभी दल मे कोई सुलझे हुए व्यक्ति आ जाते हैं जिनको दल के काम के साथ अपनी भावनाओ को पूरा करने का घ्यान भी होता है और वे दल के नेता का भी अपमान करने या उनकी आज्ञा की अवहेलना करने से नही झिझकते। ऐसे नवयुवको मे से एक यशपाल भी था जो लगभग एक-डेढ वर्ष से लाहौर के दल में सम्मिलित था। वह समझदार था परन्तु उतावला अधिक। उसको अपनी जान की परवाह नही थी, परन्तु वह जिस बात को उचित समझता था, उसको दल के सदस्यो तथा नेता के विचारो के विरुद्ध होते हुए भी करना चाहता था और कर भी गुजरता था।

एक ओर दल जब लार्ड साइमन को मारने मे असफल हो गया, दूसरी ओर भगतसिंह तथा दत्त दिल्ली मे और लगभग सभी साथी लाहौर मे पकड लिए गये तो यशपाल ने लार्ड इरविन, उस समय के भारत मे वायसराय, को मारने की योजना बनाई। दल लार्ड इरविन के व्यक्तिगत विरुद्ध नही था।

परन्तु भारत मे वह अंग्रेज शासको का प्रतिनिधि था और उसको मारना अंग्रेजो की भारत मे शासन नीति का विरोध प्रकट करना था। पण्डित जी को भी योजना पसन्द आई। उस समय तक बम के खोल बनाने की फैक्टरी बन्द हो चुकी थी। केवल एक ही खोल था जिसका बम बना लिया गया। परन्तु एक खोल पर्याप्त नही था, पण्डित जी ने एक पीतल के लोहे मे दूसरा बम बनाया। इन्द्रपाल को यशपाल ने दिल्ली से बारह मील दूर बदरपुर भेजा जिसने वे बम रेलवे लाइन के चार इच नीचे दबा कर रख दिए। वह पन्द्रह दिन तक वायसराय के लौटने की राह देखता रहा। यशपाल भी उससे समय-समय पर मिलता रहा, परन्तु अवसर नही मिला। जब वहा से बम हटाए गए तो पीतल के लोहे वाला बम नही था शायद उसको कोई ग्रामीण उठा कर ले गया था। यह सब अक्तूबर १९२९ मे हुआ।

यशपाल हताश नही हुआ। उसने तो निश्चय किया हुआ था कि लार्ड इरविन को मारना है। उसने भागराम की सहायता से पुराने किले, दिल्ली के पीछे से लगभग दो सौ गज दूर से गुजरती हुई रेलवे लाइन तक बिजली का तार डाला। लाइन के बीचोबीच एक बम थोडी-सी पृथ्वी खोद कर दबा दिया और उस बम के छोडने वाले डेटोनेटर को बिजली के तार से पुराने किले मे रखी हुई एक बैट्री बक्स से जोड दिया जिससे बटन दबाते ही बम फट जाए।

२३ दिसम्बर की प्रात लार्ड इरविन इसी लाइन पर बाहर से दिल्ली लौट रहा था। वह सध्या समय महात्मा गाधी से मिलने वाला था।

मैं अपने सम्बन्ध मे यह तो बता चुका हू कि जब मैं रामस्वरूप के घाट पर कुदसिया बाग के समीप जमना पर रह कर अपनी एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, उस समय काशीराम द्वारा मेरी भेंट अनेक क्रातिकारियो से हो गई थी। कुछ ही दिनो बाद कैलाशपति दिल्ली लौट आया था और काशीराम ने मुझे बताया कि वह (कैलाशपति) दिल्ली के क्रातिकारी दल का सगठन-कर्त्ता नियुक्त हो गया है। अक्तूबर १९२९ मे मैं हिन्दू कालिज मे लेक्चरर नियुक्त हो गया। साथ ही होस्टलो का सुपरिण्टेण्डेण्ट भी। तीन होस्टलो मे से एक उस समय ४-रामचन्द्र लेन, मैटकाफ हाउस रोड पर स्थित था और मैं उसी होस्टल मे एक कमरे मे रहने लगा। उस कमरे के साथ दो छोटे-छोटे कमरे थे जिनमे से एक बाथ रूम का काम देता था। मैं अविवाहित था, अब भी हूँ, इसलिए मैंने अपने खाने का पृथक् प्रबन्ध नही किया था। होस्टल मे चार मैस

थे, उनमे से एक मे मैं भी शामिल हो गया था। कालेज की ओर से मुझे एक नौकर भी मिला हुआ था।

उस होस्टल मे मेरे जाते ही कैलाशपति भी, जिसका दल का नाम शीतलप्रसाद था, मेरे पास ही रहने लगा। वह प्राय खाना भी मेरे साथ ही खाता था। मेरे अपने ऊपर खाना आदि मिलाकर केवल २५-३० रुपये मासिक व्यय होता था और शेष वेतन मैं कैलाशपति को दल के लिए दे देता था। मैं कालेज साइकिल पर आता-जाता था और एक ही समय, प्रात भोजन करता था।

दिसम्बर १९२९ का महीना था। लाहौर षड्यन्त्र केस चल रहा था। भगतसिंह और पण्डित चन्द्रशेखर के कारनामो का वर्णन उस समय के समाचारपत्रो मे मोटे-मोटे शब्दो मे उल्लेख होता था। लोगो का ध्यान क्रान्तिकारी दल की ओर प्रशसायुक्त कौतूहल से खिच रहा था। यह प्राय सुनने मे आता था कि "यदि वे लोग पण्डित चन्द्रशेखर के दर्शन कर सकें तो उनको जो वह मागेंगे, दे देंगे।" आदि।

लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम

२२ दिसम्बर १९२९ को मेरे कमरे मे दल के चार सदस्यो की सभा हुई, पण्डित जी ने बाद मे बताया था कि उसमे यशपाल, भगवतीचरण, वीरभद्र तिवारी और पण्डित जी थे। यह सभा यशपाल के कहने पर बुलाई गई थी और उसमे प्रश्न था आगामी प्रात काल लार्ड इरविन की गाडी पर बम चलाना, जिसका कि प्रबन्ध हो ही चुका था। सभा लगभग चार घण्टे चली थी। पडित जी के कथनानुसार वह और वीरभद्र तिवारी उस एक्शन के विरोध मे थे। कारण था शायद इरविन को उसी शाम महात्मा गाधी से भेंट करनी थी। भगवतीचरण की कोई राय न थी, परन्तु वह भी चाहते थे कि एक्शन को स्थगित कर दिया जाए तो अच्छा होगा। परन्तु यशपाल तो दृढ सकल्प करके आया था कि वह तो यह एक्शन करेगा ही, दल साथ दे या न दे। सभा किसी परिणाम पर अभी नही पहुची थी कि यशपाल उठ कर चला गया। उसके पश्चात् भगवतीचरण और वीरभद्र भी चले गए।

२२ दिसम्बर की रात्रि को पण्डित जी मेरे साथ ही सोए। कैलाशपति कही दूसरी जगह चला गया। २३ दिसम्बर को पण्डित जी प्रात काल उठे और मुह हाथ धो मेरी साइकिल ले नगर की ओर चले गए। मुझे पहले दिन वाली सभा का कुछ हाल मालूम नही था। लगभग एक घण्टे मे लौटे और बोले, सुना,

लार्ड इरविन साहब की ट्रेन पर बम चला दिया गया। मैं मुस्करा दिया, परन्तु वह गम्भीर थे। फिर बोले, "साले सोहन से मना किया था परन्तु वह माना ही नहीं (सोहन यशपाल का दल का नाम था)। देखो अब क्या होता है।" वह कमरे के बाहर ही घूमते रहे। थोडी देर मे एक तोप के छूटने की ध्वनि सुनाई दी। उन्होंने ठण्डी श्वास ली और बोले, "अच्छा ही हुआ, लार्ड इरविन मारा नही गया।"

२२-२३ दिसम्बर की रात अतीव ठण्डी रात थी। कोहरा चारो ओर छाया हुआ था। पाच गज पर रखी हुई वस्तु भी दिखाई नही पडती थी। पण्डित जी लगभग दो घण्टे पश्चात् फिर साइकिल पर नगर की ओर गए और लगभग दो ही घण्टे बाद लौटे। उन्होंने मुझे बताया कि बम पुराने किले के सामने रेलवे लाइन पर उस समय फटा जब वायसराय की गाडी लगभग ५० मील के वेग से दिल्ली की ओर आ रही थी। गाडी के एक डिब्बे का कुछ भाग उड गया। परन्तु वायसराय सही सलामत दिल्ली पहुच गया।

मैं उसी सन्ध्या लाहौर मे काग्रेस सेशन मे शामिल होने के लिए चला गया और वहा से चार जनवरी को लौटा। पण्डित जी मेरे कमरे मे ही रहते रहे। ४ जनवरी को यशपाल भी मेरे कमरे मे आया हुआ था। पण्डित जी ने उससे परिचय कराया और फिर यशपाल ने उस एक्शन का और उसके पश्चात् अपने साफ निकल जाने का ब्यौरा इस प्रकार दिया

वह (यशपाल) भागराम के साथ एक मोटर साइकिल पर, जो दल ने एक्शनो के लिए खरीदी थी, रात ११ बजे पुराने किले पर पहुच गया था। २ बजे तक दोनो ने बम को बैट्री से जोड दिया था। उस रात ठण्ड बहुत थी, कोहरा भी पड रहा था। वह एक फौजी कप्तान की वर्दी पहने हुए था। रात भर सर्दी मे बैठा रहा। प्रात लगभग साढे ६ बजे दूर से गाडी के आने की ध्वनि आई। वह सतर्क हो गया। पहले पाइलट इजिन लाइन पर से गुज़रा। कुछ देर पश्चात् गाडी आई जो कोहरे के कारण दिखाई नही दे रही थी। उसने अनुमान से दो डिब्बो को गुज़र जाने दिया और फिर बैट्री का बटन दबा दिया। एक ही क्षण मे बम के फटने की गूज आई परन्तु उसने देखा कि गाडी पटरी से उतरी नही। वह उसी वेग के साथ नई दिल्ली की ओर चली गई। उसने तार आदि का सामान वही छोड मोटर साइकिल को चलाना चाहा, परन्तु उसका इजिन सर्दी से जाम हो गया था। वह स्टार्ट नही हुई। उसने भागराम की सहायता से मोटर साइकिल को हाथो से धकेल कर दिल्ली नगर

की ओर चलना शुरू किया। अभी अधेरा ही था और कोई व्यक्ति वहा आ-जा नही रहा था। जब वह दोनो मोटर साइकिल को धकेलते हुए, दिल्ली दरवाजे के समीप जेल के सामने पहुचे तो उस समय पुलिस का एक दस्ता पुराने किले की ओर जाता मिला। उस दस्ते के आफिसर ने यशपाल को मिलिटरी का आफिसर समझ कर सलाम दिया। यशपाल ने उसको बताया कि वह उसी ओर जा रहा था कि उसकी मोटर साइकल फेल हो गई। पुलिस दस्ता पुराने किले की ओर चला गया और यशपाल दरयागज मे आकर मोटर साइकिल एक मरम्मत करने वाली दुकान पर छोड कर सीधा रेलवे स्टेशन चला गया। फर्स्ट क्लास का गाजियाबाद का टिकट ले पहले उस ओर जाने वाली गाडी मे बैठ गया। वहा भगवतीचरण उसके साथ हो लिया और दोनो कलकत्ता चले गए। जनवरी मे वह फिर दिल्ली लौटे और मेरे कमरे मे आ गये। पुलिस के बहुत प्रयत्न करने पर भी लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम फेंकने वालो का कोई सुराग नही मिला।

यशपाल जब पण्डित जी से मेरे कमरे मे मिला तो पण्डित जी उस पर बहुत क्रोधित हुए कि उसने दल की आज्ञा के विरुद्ध एक्शन क्यो किया। परन्तु जब यशपाल ने अपना पिस्तौल उनके सामने रख उनसे क्षमा मागी तो उन्होंने आसू भरी आखो से उसे अपने गले लगा लिया।

मोटर साइकिल को दुकान से लाया गया। उसे मेरे होस्टल मे तोडा गया। छोटे-छोटे टुकडे तो यमुना नदी मे फेंक दिए गए। बडे-बडे भाग मैंने अपने एक परिचित साइकिल डीलर के पास लाल किले की दुकान पर बेचने के लिए रखवा दिए। पुलिस ने कैलाशपति की गवाही पर उन पुरजो को वहा से प्राप्त किया और उस मेरे परिचित डीलर ने पुलिस के दबाव से बहुत कुछ झूठी गवाही मेरे विरुद्ध अदालत मे दी।

महात्मा गांधी और क्रान्ति दल

उन्ही दिनो वायसराय की ट्रेन घटना के पश्चात् महात्मा गाधी ने अपने साप्ताहिक पत्र "यग इण्डिया" मे एक लेख बम पार्टी (Cult of the Bomb) पर लिखा था जिसमे उन्होने क्रान्तिकारियो को बहुत कुछ भला-बुरा *कहा था और उनका बुज़दिल, गुमराह आदि के नामो से वर्णन किया था।* पण्डित जी को उस लेख से बहुत दुख पहुचा था। वह गाधी जी के अहिंसा मार्ग से स्वाधीनता प्राप्त होने मे विश्वास नही करते थे। परन्तु वह गाधी जी की ओर सद्भाव से देखते थे। वह प्राय दल के सदस्यो से कहा करते थे कि दल के एक्शन काग्रेस के कार्य के पूरक होगे, विरुद्ध नही होगे। आखिर दोनो ही स्वाधीनता की लडाई लड रहे है। दोनो अपने-अपने मार्गो द्वारा एक ही ध्येय की ओर कूच कर रहे है। भेद केवल इतना है कि एक ओर काग्रेस के लीडर छ महीने के लिए जेल जाते है जहा जेल अधिकारी उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। जेल मे उनको कोई तकलीफ नही होती। बाहर आने पर उनको सभी से आदर-सम्मान मिलता है। बाहर या अन्दर उनको पैसे या खाने-पीने की त्रुटि नही होती। छ महीने आराम के साथ जेल काट कर वे लोग लीडर बनकर निकलते हैं। दूसरी ओर क्रान्तिकारियो का जीवन असुविधाओ और मुश्किलो से भरा है। खाने-पीने की कमी, रुपया पैसा पास नही, पहनने को मैले-कुचैले कपडे और सोने को जहा भी सुरक्षित स्थान मिल जाए, जीवन सदैव हथेली पर रखा हुआ, कभी भी गोली से मार दिये जाने की सम्भावना, यदि जीवित पकडे जाए तो आजीवन काल-कोठरी मे पडे सडना, प्रत्येक प्रकार की

असुविधाए और इन सब बातो के होते हुए भी सराहने की एक बात नही। मित्र, सम्बन्धी सभी का त्याग, कई-कई दिन भूखे रहना, जाडे गर्मी मे ठण्डे कपडे पहनना, इन सब बातो के होते हुए वह केवल देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है। फिर भी उनको गाधी बुज़दिल कहे और उन्हे भला-बुरा कहे तो इससे अधिक नासमझदारी और अन्याय क्या हो सकता है। महात्मा गाधी साधन को बुरा कह सकते थे, साधको को नही। उन्होने भगवतीचरण से गाधी जी के लेख का उत्तर लिखने के लिए कहा।

यहा कुछ शब्द महात्मा गाधी के विचारो के सम्बन्ध मे अनावश्यक नही होगे।

वैसे तो काग्रेस का जन्म १८८५ मे हो चुका था, परन्तु १९१८ तक की काग्रेस की गतिविधि तथा कार्य कुछ और ही रूप रखते थे। यह सत्य है कि बालगगाधर तिलक भी उस समय काग्रेस के नेताओ मे से ही थे। परन्तु वह तो उग्र नीति का प्रचार करते थे उन्होने ही "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है" का नारा देश को दिया था और तिलक उस स्वराज्य को किसी भी प्रकार शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करना चाहते थे। परन्तु उस समय की काग्रेस मे तिलक की आवाज़ नक्कारखाने मे तूती की ध्वनि के समान थी, जिसको अन्य काग्रेसी नेता तथा जनता सुनने के लिए तैयार ही नही थी।

ठीक इसी समय महात्मा गाधी आगे आये। उनको पिछले कई वर्षो के तजुर्बे से यह भली भाति ज्ञात तथा आभास हो गया था कि देश की स्वतन्त्रता मागने या प्रस्ताव पास करने से नही मिल सकती।

उस समय तक इस ससार के पराधीन देशो की स्वाधीनता के युद्ध का एक ही मार्ग सामने आया था, वह था हिंसा का प्रयोग। महात्मा गाधी ने उस मार्ग को न अपनाकर अहिंसा का मार्ग देश के सन्मुख रखा। इस अहिंसा के मार्ग को उन्होने कितने ही रूपो मे देश के सन्मुख प्रस्तुत किया। परन्तु उनका १९२१ का पहला प्रयत्न चौरी-चौरा मे लोगो के हिंसा मार्ग के अपनाने से असफल हो गया और महात्मा जी ने उस प्रयत्न को 'हिमालय पर्वत के समान भूल' कहकर स्थगित कर दिया।

उसके पश्चात् ही ब्रिटिश सरकार हिन्दू और मुसलमानो मे फूट डलवाने मे सफल हो गई और पाच-छ वर्षो तक इन झगडो ने देश के कोने-कोने को जड से हिला दिया। परन्तु महात्मा गाधी ने हिम्मत नही हारी। उनका प्रयत्न लेखो, भूख हडतालो, चरखा-सघो द्वारा चलता ही रहा। उधर काग्रेस मे भी

दो दल हो गये थे। एक महात्मा गाधी के साथ रहा जो असहयोग मे विश्वास करता था। दूसरा वह दल जो असेम्बली द्वारा अपनी मागो को साम्राज्यवादियो के सामने रखना चाहता था। इस दूसरे दल के नेता थे पण्डित मोतीलाल नेहरू।

कहते है सत्य कभी कभी बडा कडुवा होता है। इस कथन की सत्यता महात्मा गाधी को दूसरे विश्वयुद्ध के आरम्भ मे ही ज्ञात हो गई। जिन उच्चकोटि के नेताओ को वह समझते थे कि उनका अहिंसा मे पूर्ण तथा अटूट विश्वास है उन्होने ब्रिटिश सरकार को यह प्रस्ताव दिया कि यदि वह भारत को युद्ध के अन्त मे स्वराज्य देने का वादा करे तो वे लोग उसके साथ युद्ध मे सहयोग देंगे। अभिप्राय यह कि उनका अहिंसा मे विश्वास केवल एक नीति भर था, पूर्ण नही था। महात्मा गाधी ने इस प्रस्ताव का पूर्णरूप से विरोध किया, परन्तु यह उनकी अकेली ही ध्वनि थी और महात्मा जी को काग्रेस की चार-आने वाली सदस्यता से भी त्याग-पत्र देना पडा।

परन्तु क्रान्तिकारी तो अधिक सत्यवादी थे। वे तो डके की चोट कहते थे कि वे हिंसा के मार्ग मे विश्वास करते है। इसी विश्वास को उन्होंने महात्मा गाधी के लेख Cult of the Bomb के उत्तर Philosophy of the Bomb मे दर्शाया।

बम के पीछे फलस्फा

लाहौर म वार्षिक काग्रेस सेशन मे २६ जनवरी १६३० के दिन समस्त भारत मे स्वतन्त्रता-दिवस मनाने की घोषणा की थी। दल ने उसी दिन महात्मा गाधी के बम पार्टी का (Cult of the Bomb) उत्तर बम का दर्शन (Philosophy of the Bomb) के द्वारा देने का निश्चय किया।

२६ जनवरी को भारत के प्रमुख नगरो मे प्रातःकाल लोगो के घरो मे, कालेजो के होस्टलो मे, अदालतो मे, व्यापार-घरो मे एक पर्चा पाया गया, जिसका शीर्षक था Philosophy of the Bomb। उस पर्चे मे महात्मा गाधी के लेख का पूर्णतया उत्तर दिया गया था कि गाधी जी अपने अहिंसा मार्ग की सराहना करते हैं, परन्तु उनका क्रान्तिकारियो के प्रति दोष निकालना अत्यन्त निरर्थक है। जो युवक अपने कामो, अपने बलिदानो को बिना प्रशसा की आशा से करते हैं और हसते-हसते फासी पर भी चढ जाते है, या गोली से उडा दिये जाते हैं, वे उन लोगो से कही अधिक सराहनीय हैं जो यह समझते हैं कि

छः महीने के लिए जेल जाने से या नमक का कानून तोडने से स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे। उस पर्चे का आशय इस प्रकार था —

"क्रान्तिकारी दल पर महात्मा गाधी ने उनके प्रति कायरता आदि का जो लाछन लगाया है, दल ने इस 'बम के दर्शन' का पर्चा बाटकर अपना विचार-विनिमय जनता के सामने रखा है और उसी के ऊपर छोडा है कि वही इस बात का निर्णय करे कि क्रान्तिकारी कायर है या वीर।

"क्रान्तिकारी हिंसा हिंसा की खातिर नही करते। वे तो अपने विश्वास के अनुसार न्याय चाहते है और अपने उद्देश्य की पूर्ति मे अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं। वे आत्मिक तथा शारीरिक बल मे भेद नही करते। दोनो का ही अपने-अपने स्थान पर प्रयोग करते हैं। क्रान्ति का अभिप्राय समझाते हुए पर्चे मे लिखा था कि इसका लक्ष्य एक नई न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है जिसमे पूजीवाद को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना और देशी तथा विदेशी शोषण से जनता मुक्त हो, आत्मनिर्णय द्वारा जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले और शासन मजदूर श्रणी का हो।

"भारत का युवक सामाजिक अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह पर तुला हुआ है। यही विद्रोह आतकवाद का रूप ले रहा है, जो क्रान्ति का आरम्भिक चिह्न है। आतकवाद अन्यायी शोषक के हृदय को दहलाता है और पीडित तथा दलित जनता को प्रतिकार द्वारा आत्मविश्वास, उत्साह और साहस देता है। फिर भी दल का लक्ष्य आतकवाद नही है। आतक का मार्ग क्रान्ति मे परिणित होगा और क्रान्ति सर्वसाधारण जनता की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता म परिणित होगी। क्रान्तिकारी क्रान्ति के मार्ग मे विश्वास करते हैं। उनके सामने ससार के दूसरे उदाहरण मौजूद हैं। काग्रेस बजाय ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लडने के क्रातिकारी दल के पीछे पड रही है। महात्मा गाधी भारत को क्रूरता से माथ दलने वालो को अपना मित्र बनाते हैं, देश पर अपना जीवन निछावर करने वालो को कायर और उनके एक्शनो को जघन्य कहते हैं। जनता क्रान्तिकारियो के साथ ही है, यह तो लाहौर काग्रेस ने स्पष्ट कर दिया'। गाधीजी का यह भ्रम है कि जनता उनके साथ है। जनता तो उनके साथ होती है जो उससे प्रेम करता है और उससे घृणा करती है जो उसे दुख देता है। इस बात मे भारत की जनता दूसरे देशो की जनता से भिन्न नहीं है। आखिर महात्मा गाधी ने कितने डायर, ओडायर, रीडिंग या इरविन को प्रेम से अपनी ओर कर लिया है और फिर ब्रिटिश साम्राज्य तो बहुत दूर है।

"कांग्रेस का कर्तव्य भारत को स्वाधीन कराना है। अंग्रेजों के आगे गिडगिडा कर उनसे समझौता करना नहीं। *जिस पूर्ण स्वतन्त्रता को क्रान्तिकारी* पिछले २५ वर्षों से अपना लक्ष्य बनाते आए है, आज कांग्रेस ने भी उसे अपना लक्ष्य बना लिया है। क्रान्तिकारी समझौता नहीं चाहते, वे तो व्यवस्था बदलना चाहते है। परन्तु कांग्रेस की होम रूल, स्वायत्त शासन, उत्तरदायी स्वायत्त शासन, पूर्ण उत्तरदायी शासन और औपनिवेशिक स्वराज्य की मागो मे दासता प्रतीत होती है। क्रान्तिकारी केवल पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते है। कांग्रेस ने जनता मे चेतना अवश्य पैदा की, परन्तु उसको अपने समझौते की नीति से कुचल डाला। जनता मे चेतनता तो केवल संघर्ष से आती है, समझौते से नहीं। समझौता ही तो कायरता का मूल है और वह देश के साथ विश्वासघात है। गांधीजी तो चाहते है कि जनता क्रान्तिकारियो के साथ कोई सम्पर्क न रखे, सहानुभूति न दिखाए, सहायता न दे। गांधीजी ने क्रान्तिकारियो की भावना को समझने का प्रयत्न नहीं किया। क्रान्तिकारी अपने जीवन की बाजी लगाकर आगे बढते है उन्हे जय-जयकार और फूलो की आवश्यकता नहीं है। वे अपने कर्तव्य पालन मे निन्दा अथवा कठिनाइयां की परवाह नहीं करते। *उन्हे अपने कार्यक्रम की सच्चाई पर पूर्ण विश्वास है। वे बलिदान और सफलता* की कसौटी पर पूरे उतरते है। यह सम्भव है कि जनता उनकी सचाई को न पहचाने।

"हम अपने देश के नौजवानो, मजदूरो, किसानो और बुद्धिमानो से अनुरोध करते है कि वे देश की आजादी के झण्डे के नीचे एकत्रित होकर हमारा साथ दें। देश मे ऐसी व्यवस्था लाने का प्रयत्न करे जिसमे राजनैतिक और सामाजिक दासता और आर्थिक शोषण असम्भव हो जाए।

"अहिंसा के नाम पर समझौतावादी नीति को ठोकर मार दीजिए। हमारी संस्कृति और गौरव का कोई अर्थ उस समय तक नहीं होगा जब तक अहिंसा के नाम पर विदेशी दासता के सन्मुख सिर झुकाए रहेंगे।"

क्रान्ति चिरजीवी हो।'

यह पर्चा पण्डित जी के कहने पर भगवतीचरण ने लिखा था और पण्डित जी ने कानपुर मे छपवाया था।। एक पर्चे की कापी गांधीजी को भी भेजी गई थी। उन्होने इसकी 'यंग इण्डिया' मे प्रशंसा की और माना कि उन्होने अपने पहले लेख मे क्रान्तिकारियो के प्रति न्याय नहीं किया था। अपने दूसरे लेख मे हिंसा मार्ग को बुरा बताते हुए भी क्रान्तिकारियो की वीरता की

तारीफ की और अन्त मे लिखा कि उनको पूर्ण विश्वास है (था) कि वह तीन वर्षो मे अहिंसा मार्ग से भारत को स्वाधीनता दिला देंगे। यदि वह ऐसा न कर सके तो फिर क्रान्तिकारी अपने मार्ग को फिर से अपनाकर अपना कार्य आरम्भ कर ले।

महात्मा गाधी के उस लेख से देशवासियो के दिलो मे क्रान्तिकारियो के प्रति कुछ श्रद्धा बढी, परन्तु कोई वास्तविक परिणाम नही निकला। रुपये-पैसे की कमी तो बनी ही रही। हा, युवक अवश्य अधिक सख्या मे इससे सहानुभूति दिखाने लगे और दल के सदस्यो को अपनी सख्या बढाने तथा सहायक भी बढाने मे कुछ सफलता अवश्य मिली।

पंडित जी और चटगांव आरमरी-रेड

लगभग भारत के सभी बड़े-बड़े नगरों में एक साथ 'बम का दर्शन' पर्चा बंटने से सरकार अत्यन्त चौकन्नी हो गई। सरकारी अधिकारी तो समझे बैठे थे कि लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्तों को पकड़ कर उन्होंने दल को जड़ से उखाड़ दिया है और उसके इने-गिने दो चार सदस्य शीघ्र ही पकड़ लिए जाएंगे। लार्ड इरविन की ट्रेन पर फेंके जाने वाले बम ने मानो उनको सोते से चौंका दिया था। इस पर्चे के वृहद् वितरण ने तो उनकी आंखें खोल दीं। समस्त भारत में पुलिस और सी० आई० डी० चौकन्नी कर दी गई। पण्डित जी के जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए तो अनेकों उनके पहचानने वाले पुलिस की नौकरी में ले लिए गए थे। उनका ६०), ६०) रुपये मासिक पगार पर रखा गया था और उनका इधर-उधर आने-जाने का खर्चा भी सरकार ही देती थी। पुलिस और सी० आई० डी० आफिसरों को भी पर्याप्त संख्या में रुपया ऐसे ही काम में खर्च करने के लिए दिया गया। कुछ लोगों ने कभी-कभी पण्डित जी को पहचाना भी परन्तु वे उनको पकड़वा नहीं सके। एक बार पण्डित जी, भगवतीचरण के साथ कानपुर में मेस्टन रोड से जा रहे थे कि उनके पहचानने वाले पुलिस की सर्विस में एक व्यक्ति ने उनका पीछा किया। वे दोनों मूलगंज की ओर जाते हुए एक गली में मुड़ गए और उसके मोड़ पर जाकर ठहर गए। जब वह मुखबिर उस मोड़ पर पहुंचा तो पण्डित जी ने उसकी छाती पर अपना पिस्तौल रखा और बोले, क्या तू अपनी मौत चाहता है। वह सकपका गया और उसकी घिग्घी बंध गई। उसने हाथ जोड़े। पण्डित जी ने उसे उल्टा लौट

जाने के लिए कहा और साथ ही यह भी कह दिया कि उसने पलट कर देखा तो पण्डित जी उसको गोली मार देंगे। उसके पश्चात् जब कभी उसने पण्डित जी को कही भी देखा, अपना मुख फेर लिया।

इस प्रकार सरकार के सभी यत्न पण्डित जी या दल के अन्य सदस्यो को पकडने मे असफल रहे। सरकार को अधिक दुख और मलाल इस बात का था कि वे लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम चलाने वालो का पता भी न लगा सकी थी।

पण्डित जी इन दिनो मेरे साथ होस्टल मे ठहर कर मेरी दवा-दारू कर रहे थे (मुझे टायफायड हो गया था)। वह तीन महीनो तक बाहर नही गए। उनसे मिलने यू० पी० से वैशम्पायन, पजाब से भगवतीचरण, यशपाल आदि आते रहते थे।

उन दिनो हमे विश्वस्त सूत्रो से पता चला कि ब्रिटिश सरकार ने चार स्काटलैण्ड के उच्च आफिसर वायसराय की ट्रेन पर बम चलाने वालो का सुराग लगाने के लिए भेजे हैं। वे चारो आफिसर मेरे होस्टल के समीप के एक बगले मे आकर ठहरे। पण्डित जी ने उनकी निगरानी आरम्भ कर दी। इस कार्य मे हमे अपने होस्टल के धोबी से बहुत सहायता मिली जो उनके कपडे भी धोता था। पण्डित जी ने एक दिन विचार किया कि उन चारो को गोली से उडा दिया जाए। जब भगवतीचरण से अनुमति ली तो उन्होने मना कर दिया। कारण इस एक्शन से पुलिस की सरगर्मी, विशेषकर दिल्ली मे, बढ जाती और उस समय दिल्ली और विशेषत होस्टल मे मेरा कमरा दल का केन्द्र बन गया था, जिसको दल का कोई भी सदस्य छोडने के लिए तैयार नही था। पण्डित जी ने इस एक्शन का ध्यान छोड दिया।

चटगांव आरमरी-रेड

एक ऐसा एक्शन करो जिससे क्रान्तिकारियों का सिर सारे भारत मे ऊचा उठ जाए। मेरा आशीर्वाद तुम लोगो के साथ है।" वैशम्पायन के अनुसार चटगाव के प्रद्युम्न गगोली आजाद से कानपुर मे मिले थे और आजाद ने उनको दो रिवाल्वर भी दिये थे।

चूकि यह मुलाकात मेरे होस्टल मे हुई थी और एक नही दो बगाली सदस्यो ने उनसे वार्तालाप किया था और उसके पश्चात् आजाद के चटगाव एक्शन के पश्चात् हर्ष के उद्‌गार मेरे ही सन्मुख प्रकट हुए थे, मैं समझता हू कि वैशम्पायन की सूचना का स्तर सही न था। हा, यह सम्भव हो सकता है कि वीरभद्र तिवारी ने आजाद का उन दोनो वीरो से मिलने का प्रबन्ध किया हो। मुझे इस सम्बन्ध मे कोई भी ज्ञान नही है और न ही आजाद ने मुझे ऐसा कभी बताया।

अप्रैल मे बगाल के ६४ युवक और युवतियो ने, जिनमे ११ वर्षीय बालक भी सम्मिलित थे, बडी वीरता के साथ चटगाव आरमरी (हथियारखाने) पर धावा बोल दिया और कुछ सैनिको का मारकर हथियार अपने आधीन कर चलते बने। वे अधिक दिन स्वाधीन न रह सके। सरकार को इस एक्शन से बहुत बडा धक्का लगा। वह उनके पीछे हाथ धोकर पड गई और उनके मारने मे वायुयानो की सहायता भी ली।

पण्डित जी को जब चटगाव के एक्शन की सूचना मिली तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। मुझसे बोले, "जैसा मैने उनसे कहा था उन्होंने कर दिखाया। काश, हम समस्त भारत मे ऐसा ही एक्शन कर पाते तो अग्रेजो की जडें हिल जाती। खैर, चटगाव वालो ने क्रान्तिकारियो के सिर सदैव के लिए ऊचे कर दिए है।"

भगवतीचरण की मृत्यु

टायफायड रोग के कारण मेरा स्वास्थ्य दिनोदिन बिगडता ही चला गया और मैं २० मार्च १६३० को होस्टल छोड अपने बहिन-बहनोई के साथ रहने नगर मे आ गया। पण्डित जी उसी होस्टल मे भवानीसिंह के, जो दल का सदस्य था, साथ रहने लगे। वह प्रत्येक दिन मुझे देखने आते थे। एक दिन तो उन्होंने मेरी बहिन से कहकर अरहर की दाल और चावल बनवाया और अपनी पेट भर 'दावत' की। भगवतीचरण, यशपाल और धनवन्तरी भी लाहौर से आते रहते थे, और यू० पी० से वैशम्पायन। इन्ही दिनो पण्डित जी ने रामचन्द्र शर्मा के नलगढा, जिला बुलन्दशहर के फार्म मे पिस्टल तथा राइफल शूटिंग-प्रैक्टिस का प्रबन्ध किया और वहा यशपाल, लेखराज कैलाशपति, भवानीसिंह और वैशम्पायन को ले जाकर उनको शूटिंग का अभ्यास कराया। यह रामचन्द्र शर्मा कैलाशपति के मुलतानी गवाह बनने पर फरार हो गये थे और कभी पुलिस के हाथो नही पडे। यही नही, फरार अवस्था मे जापान जाकर सुभाष बाबू के भारत से बाहर निकल जाने का प्रबन्ध भी बडी सफलतापूर्वक कर आए थे।

भगवतीचरण, यशपाल तथा धनवन्तरी की सहायता से पण्डित जी ने भगतसिंह तथा दत्त को लाहौर जेल से छुडाने की योजना बनाई। यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि लाहौर षड्यन्त्र केस मे भगतसिंह तथा दत्त तो लाहौर सेण्ट्रल जेल मे रखे जाते थे और अन्य अभियुक्त बार्स्टल जेल मे। हर रविवार को भगतसिह तथा दत्त सेण्ट्रल जेल से बोर्स्टल जेल लाए जाते थे जिससे वे दोनो अन्य अभियुक्तो से मिलकर अपने बचाव का प्रबन्ध कर सकें।

पण्डित जी की योजनानुसार भगतसिंह तथा दत्त को उस समय एक्शन कर बचाना था जब वे सेण्ट्रल से बोर्स्टल जेल ले जाए जाते थे।

इस एक्शन के लिए धनवन्तरी और यशपाल की सहायता से बहावलपुर रोड पर एक बगले का आधा भाग किराये पर लिया गया। दूसरे भाग मे एक दम्पति रहता था। किसी को कोई सन्देह उत्पन्न न हो जाए, इसलिए इस कोठी मे पण्डित जी, सुशीला दीदी, भाभी और यशपाल रहने लगे। मदनगोपाल (अजमेर वाला) मास्टर छैलबिहारी (दिल्ली वाला) को बगले मे नौकर बना कर रखा गया। टहलसिंह मोटर ड्राइवर के रूप मे था। इनके अतिरिक्त जो अन्य सदस्य बगले मे रहते थे उनमे यशपाल, धनवन्तरी, वैशम्पायन और सुखदेव राज थे। भगवतीचरण प्रत्येक दिन बगले पर आते थे और सलाह-मशविरा करते थे। इधर यशपाल ने ३ बमो मे मसाला भर उन्हे एक अलमारी मे रख दिया था।

एक्शन के दिन का समय और ब्यौरा वकीलो तथा अन्य रिश्तेदारो द्वारा भगतसिंह को पहुँचा दिया गया। एक पूर्व निश्चित स्थान पर पण्डित जी अपने साथियो के साथ एक मोटर मे बैठे होगे। उस स्थान पर पहुचते ही भगतसिंह और दत्त एक सकेत पर पुलिस गारद से पृथक् हो जायेंगे। पण्डित जी पुलिस गारद पर हमला बोल देंगे। भगतसिंह तथा दत्त शीघ्र ही कार मे जा बैठेंगे जहा उनको रिवाल्वर दे दिये जाएगे और फिर सब लडते हुए अपना मार्ग बना, वहा से निकलकर, कुछ इधर-उधर होकर, बहावलपुर रोड की कोठी पर पहुच जाएगे। परन्तु इधर पण्डित जी कार मे भगतसिंह द्वारा किए जाने वाले चिन्ह की प्रतीक्षा करते ही रह गये। ऐसा प्रतीत होता है कि भगतसिंह को पण्डित जी का सन्देशा मिला ही नही था और उन दोनो को पुलिस से पृथक् न होनेपर पुलिस पर हमला नही किया जा सकता था, वे दोनो भी तो उस हमले मे मर सकते या घायल हो सकते थे। इसी कारण यह एक्शन उस दिन तो स्थगित कर दिया गया और फिर उसी एक्शन का दिन पहली जून नियुक्त हुआ।

पण्डित जी प्रत्येक एक्शन सोच-विचार और गम्भीरता के साथ निश्चित करते थे, भावुकता से नही। भगतसिंह को छुडाने पण्डित जी पूरी तरह तैयार होकर गये थे, परन्तु जब भगतसिंह से पूर्व निश्चित सकेत नही मिला, तो उन्होंने यशपाल के बार-बार कहने पर भी भगतसिंह को उस समय छुडाने का प्रयत्न नही किया। बाद मे यशपाल ने अपनी भूल पण्डितजी से स्वीकार की, जो केवल भावुकता के कारण ही थी।

अब पहली जून की प्रतीक्षा होने लगी। तैयारिया पहले से भी अधिक कर ली गयी। तैयार बम बहावलपुर वाली कोठी की अलमारी मे रखे थे। २६ मई को भगवतीचरण, सुखदेव राज और वैशम्पायन के साथ एक बम लेकर लाहौर से कुछ दूरी पर रावी नदी के किनारे के जगलो मे बम टैस्ट करने के लिए गये। सन्ध्या का समय था। भगवतीचरण के हाथ मे बम था जिसकी पिन ढीली थी, पास ही सुखदेव राज खडा था। कुछ दूर वैशम्पायन खडा उनकी ओर देख रहा था। यकायक बिना छोडे ही भगवतीचरण के हाथ मे बम फट गया, उससे उनका दायाँ हाथ और बाजू, मुख का कुछ भाग तथा पेट का कुछ अश भी उड गया, आखें बाहर निकल आई, रक्त नल की धारा के प्रवाह की भाति निकल रहा था। वैशम्पायन ने शीघ्र ही उनको अपनी गोदी मे ले लिया और रोने लगा। उधर बम का एक छर्रा सुखदेव राज के पाव मे भी लगा। वह तो साइकिल पर नगर की ओर चल दिया। वैशम्पायन को रोते देख भगवतीचरण ने मुस्कराते हुए उसको धैर्य बधाया और कहा कि वह उनकी (भगवतीचरण की) ओर से पण्डित जी से क्षमा माग ले कि वह उनका अधिक साथ न दे सके। उन्हे इस बात का भी दुख था कि वह भगतसिंह को छुडाने से पहले ही अपने जीवन के अन्त पर पहुच गय। उनके शरीर से रक्त बह रहा था। शरीर का आधा भाग उड जाने से जो तकलीफ थी, वह तो थी ही। वह यह भी जान गये थे कि उनके जीवन का अन्त कुछ ही मिनटो मे होने वाला था, परन्तु उनके मस्तिष्क पर एक भी लकीर नही पडी। वह हँस-हँस कर तथा गम्भीरता के साथ वैशम्पायन को अपना अन्तिम सन्देश दे रहे थे। उन्होने पण्डित जी को सन्देशा दिया कि उनकी मृत्यु की पर्वाह न करते हुए पण्डित जी भगतसिंह को १ जून को छुडाने का एक्शन अवश्य करें। प्रोग्राम मे कोई रद्दोबदल न करें।

यह थे वह वीर जिनको अज्ञान अथवा ईर्षा से एक कथित क्रान्तिकारी ने सी. आई. डी का गुप्तचर घोषित किया था। भगवतीचरण ने अत्यन्त वीरता के साथ क्रान्तिकारियो के उस उपदेश के अनुसार अपनी जान दे दी कि क्रान्तिकारी बिना जाने-पहचाने, बिना रोए-धोए और बिना प्रशसा के ही अपना कर्तव्य पालन करता है। (A revolutionary dies unknown, unwept and unsung)।

बहावलपुर रोड कोठी पर बम फटे

सुखदेव राज घटना स्थल से ग्वालमण्डी की ओर गया जहा दल से सहानुभूति रखने वाले कविराज डा० परमानन्द जी रहते थे। यह वही डाक्टर थे

जिन्होंने कुछ वर्षों बाद बम्बई मे आयुर्वेदिक कालेज स्थापित किया और बम्बई निवासियो की सेवा करते-करते वही स्वर्गवासी हुए। डाक्टर परमानन्द साइकिल ले सीधे सुखदेव राज के बताए घटनास्थल की ओर चल दिये। रास्ते मे वैशम्पायन मिला, जिसने उनको बापू भाई (भगवतीचरण का दल का नाम) की मृत्यु हो जाने की सूचना दी। वैशम्पायन वहा से सीधा बहावलपुर रोड वाले बगले पर गया और वहा पण्डित जी को दुःख भरा समाचार सुनाया। पण्डित जी एक बार तो विचलित हो उठे। फिर शीघ्र ही अपने को सम्भाल, वैशम्पायन और यशपाल को साथ लेकर घटनास्थल पर आधी रात बीते जा पहुचे। भगवतीचरण उस समय तक वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। भगवतीचरण के लम्बे-चौडे सुडौल शरीर को पत्थरो के साथ बाध रावी नदी के किनारे पर एक गढा खोदकर उसमे दबा कर लौट आए। यशपाल ने इस सम्बन्ध में यह क्यो लिखा कि भगवतीचरण के शव को चादर मे पत्थरो के साथ बाध कर नदी मे डाल दिया था, परन्तु दूसरे दिन वहा से निकाल कर एक गढा खोदकर दफना दिया गया था, इसका कारण मैं नही समझ सका। वैशम्पायन के अनुसार तो उसने अपने पुराने मित्र लाहौर के दूसरे षड्यन्त्र केस के सुलतानी गवाह को बचाने के लिए ही ऐसा लिखा है क्योंकि इन्द्रपाल ने सुलतानी गवाह बनने के पश्चात् भगवतीचरण के दफनाने का स्थान पुलिस को बता दिया था और पुलिस वहा से उनकी अस्थिया निकाल लाई थी। यशपाल ने ही इन्द्रपाल को यह घटना बताई होगी, ऐसा अनुमान है।

भगवतीचरण की मृत्यु से पडित जी को बहुत बडा आघात पहुचा मानो दाया हाथ ही टूट गया हो। दोनो मे प्रगाढ प्रेम था। प्राय होस्टल मे और फिर मेरे घर मे दोनो घण्टो बैठे सोच विचार करते रहते थे। दल के एक्शनो की योजनाए सोचते रहते। सोचते-सोचते या बोलते-बोलते थक जाते थे तो खडे हो हाथो द्वारा एक-दूसरे की शारीरिक शक्ति की परीक्षा करते थे। पडित जी ने रोते-रोते अपने घनिष्ठ मित्र की मृत्यु की सूचना उनकी पत्नी भाभी को सुनाई। परन्तु भाभी भी एक वीरागना थी और एक वीर पति की पत्नी। उन्होंने हार्दिक दुख होते हुए भी पण्डित जी का ध्यान भगवतीचरण के अन्तिम सन्देश की ओर आकर्षित किया जिसमे उन्होंने पण्डित जी से अनुरोध किया था कि वह किसी कारण भी भगतसिंह के छुडाने की योजना को तर्क न करें।

पण्डित जी को इससे पहले भी कई ऐसे आघात लग चुके थे। भगवतीचरण की याद को न भुलाते हुए भी वह अपने कर्तव्य-पालन मे लग गए।

वह दल के काम को सदैव अपने व्यक्तित्व से ऊचा समझते थे। उन्होने भगतसिंह के छुडाने के एक्शन को दोहरा डाला। परन्तु वह भी उनके भाग्य मे नही लिखा था।

३०-३१ मई की रात वह कोठी के पिछले भाग के आगन मे सो रहे थे। साथ ही की दो चारपाइयो पर भाभी तथा दीदी सो रही थी। थोडी दूर पर मदनगोपाल और छैलविहारी सो रहे थे कि यकायक अलमारी मे रखे बम स्वय ही फट गए। तीव्र धमाके से चकित हो सभी जाग उठे। पण्डित जी ने उस असाधारण अवस्था को एक क्षण मे समझ लिया। सबसे पहले वह बाहर के भाग मे उस स्थान पर आए जहा रेलिंग मकान के उनके भाग को दूसरे भाग से पृथक् कर रही थी। दूसरी ओर उस भाग मे रहने वाले पति पत्नी धमाके की ध्वनि सुनकर वहा आ गए थे। पण्डित जी ने उनको अपना पिस्तौल दिखाया और कहा कि वे किसी से भी कुछ न कहे और अपने बिस्तरो पर लौट जाए। वह दोनो ही हा-हा कर अपने कमरे मे लौट गए और पुलिस को उनसे किसी प्रकार भी सहायता नही मिली। सच तो यह है कि पुलिस को बहुत दिनो बाद तक यह पता नही चल पाया कि उस बगले के इस भाग मे कौन लोग रहते थे और वे कहा चले गए। हा, इतना अवश्य समझ गए होंगे कि वे अवश्य ही क्रान्तिकारी रहे होंगे।

को इस बात का ज्ञान नही था कि दल मे स्त्रिया भी सदस्य बन गई हैं अथवा काम करने लगी हैं। पण्डित जी भी इस बात को छिपाए रखना चाहते थे। परन्तु यह भेद तो पुलिस को कोठी पर पहुचते ही खुल जाना था, जहा उनको स्त्रियो के साढी-जम्फर, पेटीकोट आदि मिलते। पण्डित जी भाभी तथा दीदी को अन्य सुरक्षित स्थान पर छोड तुरन्त साइकिल पर लौटे। उस समय तक पुलिस वहा नही पहुची थी। वह कोठी के अन्दर गए। सब कपडे एकत्रित कर एक गट्ठर बाधा, उसको साइकिल पर रख कोठी के पीछे भाग से बाहर निकले। सामने पुलिस का दस्ता आ रहा था। उसने पण्डित जी को रोका और पूछा, "कौन है तू ?" उत्तर दिया, "धोबी हुजूर !" फिर पूछा, "कहा से कपडे लाया है ?" "हुजूर इस कोठी से।" पण्डित जी ने कोठी के दूसरे भाग की ओर सकेत कर दिया। पण्डित जी सादगी और सरलता के साथ एक यू० पी० के भैया धोबी की भाति बोल रहे थे। पुलिस को उन पर लेशमात्र सन्देह नही हुआ। पुलिस को उस समय तक यह मालूम नही था कि बम इसी कोठी मे फटे है। वे लोग आगे चले गए और पण्डित जी ने यह काण्ड मुझ सुनाते हुए कहा था कि उनकी जेब मे पिस्तौल भरा प्रस्तुत था, आवश्यकता के समय वह पुलिस पर गोली चलाते हुए वहा से निकल जाते या लडते हुए अपनी जान दे देते। कुछ दिन पश्चात् छैलबिहारी शिमला चले गये और मदनगोपाल लाहौर।

परन्तु वैशम्पायन के अनुसार बगले मे पुलिस को दो पुस्तकें जो पजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी की थी और यशपाल लिखित प्रकाशो के नाम के पत्र के टुकडे मिल गये थे।

भगवतीचरण की मृत्यु और बहावलपुर रोड वाली कोठी पर बम विस्फोट का एक परिणाम यह हुआ कि भगतसिह के छुडाने का एक्शन एक प्रकार से असम्भव सा हो गया। कोठी मे बम विस्फोट ने पुलिस को अत्यन्त सतर्क कर दिया और पण्डित जी अपने और साथियो को सुरक्षित रखने मे व्यस्त हो गए। वह लाहौर छोड़ दिल्ली आ हिन्दू कालेज के होस्टल मे भवानी सिह के साथ रहने लगे और यहा से दल के काम का सचालन करने लगे।

आजाद १७ वय की आयु मे झासी मे

गाडोदिया बैंक पर धावा

लाहौर मे भगतसिंह के छुडाने के सम्बन्ध मे खर्च हुआ रुपया भगवतीचरण और दुर्गा भाभी ने दिया था। वह सब खर्च हो गया और दल धनहीन ही बना रहा। दल का काम दिनोदिन विस्तृत होता जा रहा था और पुलिस की आखो मे अब अधिक खटकने लगा था। पण्डित जी को फिर से धन एकत्रित करने मे अपना ध्यान लगाना पडा।

जून का महीना था। पण्डित जी फिर देहली मे आ गये थे। उनका ध्यान किसी बैंक के ऊपर धावा बोलने की तरफ गया। उन्होंने कई दिनो तक इम्पीरियल बैंक से रुपये लाने-ले जाने का अध्ययन किया। उसके खजाची कश्मीरी दरवाजे के खजाने से दो बन्दूकों से लैस पुलिस सिपाहियो के साथ एक लारी मे रुपया लाते थे और रेलवे क्लियरिंग एकाउन्ट्स आफिस ले जाते थे। अनुमान था कि यह रुपया एक लाख से कम नही होगा। पण्डित जी ने उस लारी पर धावा मारने की योजना बना डाली और इस एक्शन के लिए पहली जुलाई निश्चित की। कार मे यह एक्शन करना था। एक्शन मे भाग लेने वाले सभी साथी दिल्ली मे प्रस्तुत थे। पण्डित जी को पूर्ण विश्वास था कि वह इस एक्शन मे सफल रहेगे और यदि अनुमानानुसार एक लाख रुपया मिल गया तो दल को धन की चिन्ता से छुटकारा मिल जाएगा।

परन्तु भला ऐसे भाग्य कहा थे कि इतना रुपया इतनी सरलता से दल को मिल जाए। पहली जुलाई को इलाहाबाद मे पण्डित मोतीलाल गिरफ्तार कर लिए गए। उनकी गिरफ्तारी से सारे देश मे एक हलचल-सी फैल गई।

दिल्ली मे पुलिस सतर्क हो गई और पुलिस का गश्त बढा दिया गया। हथियार बन्द पुलिस लारियो मे सारे नगर का दौरा लगाने लगी। पण्डित जी इस परिणाम पर पहुँचे कि उस दिन बैक का मनी एक्शन करना बुद्धिमानी नही होगी।

दिल्ली नगर मे एक छोटा-सा गाडोदिया स्टोर था। इसके मालिक सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया थे, जिन्होने एक दान के रूप मे स्वदेशी स्टोर खोल रखा था। दल ने पहले उनको दल के नाम से एक पत्र के द्वारा दस हजार रुपया मागा। सेठ जी ने उस पत्र का उत्तर नही दिया, परन्तु पुलिस मे उस पत्र की सूचना भी नही दी। धन का इतना अभाव था कि पण्डित जी ने उन्ही के स्टोर पर धावा बोलने की योजना बना डाली। इस स्टोर की ओर ध्यान कैलाशपति ने ही दिलाया था और उसने ही १०,००० रुपये वाला पत्र लिखा था।

गाडोदिया स्टोर मे एक युवक विशम्भरदयाल काम करता था। वह कैलाशपति के सम्पर्क में आ चुका था। उसने बताया था कि प्रत्येक दिन शाम को आठ बजे स्टोर का खजाची ऊपर के कमरे मे रोकडा सम्भालता है। वही समय एक्शन के लिए सर्वोत्तम होगा। इसी स्टोर मे एक दर्जीखाना भी था, जिसमे टेलर मास्टर हरद्वारीलाल थे। उनका सम्पर्क भी कैलाशपति से हो चुका था और बाद म कैलाशपति उन्ही के मकान बाजार सीताराम मे रहता था, जहा से वह २८ अक्तूबर १६३० को पकडा गया था। रुपये का अन्दाजा विशम्भरदयाल ने लगभग २०,००० रुपये रोज का बताया था।

पण्डित जी ने गाडोदिया स्टोर से रुपया छीनने का पूरा ब्यौरा बनाया। बनारस से विद्याभूषण, लाहौर से धनवन्तरी दिल्ली से कैलाशपति, रोहतक से लेखराम और दिल्ली से एक अन्य सदस्य काशीराम, इन सबको एक्शन से एक दिन पहले दिल्ली मे एकत्रित किया। दल के पास एक सेकण्डहैण्ड कार थी, जिसमे इससे पहले असेम्बली बम काण्ड के समय भगतसिंह तथा दत्त को छुडा कर ले जाने की योजना बनाई थी, परन्तु काम मे नही लाई गई थी। लेखराम ने कार चलानी पहले से सीख ली थी। योजना के अनुसार कार का इजिन स्टार्ट कर उसको म्यूनिसिपल बाग मे कूचा नटवा के अन्दर के दरवाजे के सामने रखा गया। यह दरवाजा बाग मे खुलता था। विद्याभूषण और धनवन्तरी गली मे खडे होकर हवा मे गोली चलाते रहे। इससे जनता वहा एकत्रित तो हो गई, परन्तु किसी ने भी इन लोगो के समीप जाने अथवा उनको पकडने

का साहस नही किया। पण्डित जी स्वय काशीराम और कैलाशपति को साथ ले ऊपर के कमरे मे पहुँचे। खजाची रुपया सभाल रहा था। पण्डित जी ने अपना पिस्तौल निकाल खजाची की ओर कर उससे रुपया दे देने के लिए कहा। सामने के भाग मे सेठ जी का निवास स्थान था। वही उनकी पत्नी तथा अन्य स्त्रिया उस समय उपस्थित थी। वे स्त्रिया ऊचे स्वर मे चीखने लगी। काशीराम को क्रोध आया और उसने उनकी ओर अपना रिवाल्वर ताना परन्तु चलाने के विचार से नही। पण्डित जी ने देखते ही उसको डाटा और रिवाल्वर जेब मे रखने के लिए कहा। उधर खजाची समझ ही गया था कि रुपया दिए बिना काम नहीं चलेगा। उसने सारा रोकडा जो उस समय चादी के रुपयो मे था (उन दिनो नोटो का अधिक रिवाज नही था) पण्डित जी के आगे खिसका दिया। यह रुपया जिसमे छोटी रेजगारी भी थी, एक बोरी मे भर लिया गया। खजाची ने सेठ जी की पत्नी के सारे सोने चादी के जेवर भी पण्डित जी के सामने रख दिए। परन्तु पण्डित जी ने यह कह कर उन जेवरों को लेने से इन्कार कर दिया कि उनको माताओ और बहिनो के आभूषण नहीं चाहिए, वे डाकू नही हैं।

हवा मे गोली चलने और स्त्रियो की चीख-पुकार से गली मे जनता एकत्रित हो गई थी, परन्तु अपनी जान पर खेलने के लिए, विशेषकर सेठ जी के लिए कोई प्रस्तुत न था। पण्डित जी सब रुपया ले और दल के सभी साथियो को साथ लेकर कार तक जा पहुँचे और वहा से वह कार हिन्दू कालेज के होस्टल मे ले जाई गई। उस समय ग्रीष्म ऋतु के कारण कालेज मे छुट्टिया थी और होस्टल भी बन्द था। परन्तु भवानीसिह एक कमरे मे वही रहता था और पण्डित जी भी उसके साथ ठहरे हुए थे। होस्टल का माली, जो चौकीदार का काम भी करता था, पण्डित जी को मेरे साथ रहते हुए देख चुका था। यही नही, पण्डित जी ने अपने लिए एक रेशमी शेरवानी, एक चूडीदार पाजामा और एक पगडी बनवाई थी, स्काटलैण्ड के जासूसो को मारने के लिए, परन्तु यह निश्चय हो जाने के पश्चात् कि वह एक्शन नही किया जाएगा, उन्होंने वे कपडे माली को भेंट कर दिये थे। इसी कारण माली ने उनके तथा भवानीसिह के होस्टल बन्द होते हुए भी उनका होस्टल मे रहने मे बाधा नही डाली।

गिनने पर रुपया लगभग चौदह हजार निकला। लगभग छ-सात सौ रुपये की छोटी रेजगारी भी थी जो यमुना नदी मे फेंक दी गई। रुपया, पजाब, दिल्ली और यू पी मे बराबर के भागो मे बाट दिया गया। वैशम्पायन के

अनुसार ६ हजार रुपये कानपुर मे बम का कारखाना खोलने के लिये वीरभद्र तिवारी को दिया गया। इसमे से डेढ हजार रुपया तिवारी को दल के प्रचार के लिये दिया था। चार हजार कैलाशपति को दिल्ली मे साबुन के कारखाने की आड मे पिकरिक एसिड बनाने के कारखाना खोलने के लिये दिया। २ हजार रुपया अफ्रीदी बादशाह गुल के पास भेजने के लिये रखा गया। बादशाह गुल के द्वारा दल के रावलपिण्डी स्थित सदस्य रामकिशन पिस्तौल, रिवाल्वर आदि खरीदते थे।

दिल्ली कुतुब रोड पर साबुन का कारखाना

दिल्ली शाखा के भाग मे आने वाले रुपये से कुतुब रोड पर एक बडा मकान किराये पर लिया गया। अभिप्राय था पिकरिक एसिड बनाना। नाम रखा गया हिमालय टॉयलेट फैक्टरी। साबुन और तेल भी बनाए गये, परन्तु केवल आड लेने के लिए ही। वस्तुत तो पिकरिक एसिड बनाया जाता था और साथ ही गनकाटन और नाइट्रो ग्लीसरीन। यह सभी बम बनाने के मसाले थे। फैक्टरी मे काम करने वाले थे, विमलप्रसाद जैन और उनकी पत्नी, यशपाल, कैलाशपति, गिरवरसहाय, वात्स्यायन, प्रकाशवती, भवानीसहाय इत्यादि। भाभी और दीदी भी आती-जाती रहती थी। पण्डित जी कानपुर लौट गए थे, जहा वह बमो के खोल बनवा रहे थे।

यहा प्रकाशवती के सम्बन्ध मे उसका परिचय देना कुछ अनुचित नही होगा। यह मुझे पण्डित जी ने नही बताया था, यशपाल, कैलाशपति, विमल-प्रसाद, धनवन्तरी आदि के द्वारा यह समाचार प्राप्त हुआ था।

प्रकाशो का परिचय दल को यशपाल ने ही दिया था। उसने कहा था कि प्रकाशो कई हजार रुपये लेकर घर से भाग कर दल मे सम्मिलित हो जायगी। भगवतीचरण या आजाद को प्रकाशो की कम उम्र होने का उस समय तक ज्ञान नही हुआ जब तक वह दल मे आ न गई और जब आई तो रुपया लेकर नही, खाली हाथ।

आजाद तथा भगवतीचरण ने उसको किसी विशेष स्थान पर रखकर उसके पढाने के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव रखा परन्तु वह यशपाल को स्वीकार नही था।

प्रकाशवती अपना घर छोड दल के भिन्न-भिन्न स्थानों पर लाई गई। पण्डित जी ने यह सब कुछ अनुचित समझते हुए भी उसको दल मे स्थान दे दिया।

कुतुब रोड के कारखाने मे वात्स्यायन और यशपाल की देख-रेख मे बमो का मसाला बन रहा था। प्रकाशवती भी वही थी। कुछ अश मे विलासिता आ जाने से यशपाल की कार्यशक्ति मे शिथिलता आ गयी थी। वह फिजूलखर्च भी बहुत था। स्वय तो अच्छे से अच्छे कपडे पहनता था और अच्छे से अच्छा खाना खाता था ही, उसने प्रकाशवती पर भी अनुचित अश मे रुपया खर्च करना आरम्भ कर दिया। यह बात अन्य सदस्यो को खलने लगी। उनमे धनवन्तरी भी था। धनवन्तरी लाहौर के एक अच्छे घराने मे उत्पन्न हुआ था। कालेज के दिनो मे नौजवान सभा के काम का भार अपने कन्धो पर ले लिया था। नेशनल कालेज मे पढता था पर अन्त मे उसने वैदिक की परीक्षा पास कर ली थी। वह यशपाल तथा भगवतीचरण और अन्य दल के सदस्यो के सम्पर्क मे आ चुका था और जिन दिनो भगतसिंह वाला अभियोग लाहौर मे चल रहा था, वह पण्डित जी से भी मिल लिया था। पण्डित जी उस पर पूरा विश्वास करते थे।

भगवतीचरण की मृत्यु के पश्चात् पण्डित जी ने यशपाल को पजाब के दल का भार सौंप दिया था। परन्तु जब उनको यशपाल के काम मे शिथिलता की रिपोर्टें मिली तो उन्होने यशपाल को दिल्ली की फैक्ट्री मे भेज धनवन्तरी को पजाब के दल का नेता नियुक्त कर दिया था। दिल्ली की फैक्ट्री मे भी यशपाल अपना पहले जैसा ही जीवन व्यतीत करता रहा। शायद उसके लिए अब अपने स्वभाव को बदलना असम्भव नही तो कठिन अवश्य हो गया था। धनवन्तरी और कैलाशपति उसके विरुद्ध पण्डित जी को लगातार शिकायतें भेजते रहे। उन शिकायतो मे कितनी सत्यता थी, मैं नही कह सकता। मैं तो उन दिनों टायफाइड के रिलैप्स से पीडित था, परन्तु बाद मे पण्डित जी से मिलने पर मुझे उन्होंने बताया था कि वह यशपाल से बहुत चिढ गए थे।

कैलाशपति, विमलप्रसाद तथा अन्य साथियो के साथ धनवन्तरी ने भी यशपाल के विरुद्ध पण्डित जी से शिकायत की थी।

यशपाल को गोली मारने का निश्चय

पण्डित जी यशपाल के आचरण मे पहले ही चिढ़े हुए थे। परन्तु वह दल का एक जिम्मेदार व्यक्ति था। अपनी जान पर खेल कर लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम चलाया था। अपना जीवन हथेली पर रख कर कोई भी काम करने के लिए प्रस्तुत रहता था। इसी कारण पण्डित जी उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नही करना चाहते थे। परन्तु दिल्ली की "मावुन्" फैक्ट्री का समाचार जान और सभी सदस्यो की रिपोर्ट पाकर वह इस निश्चय पर पहुचे कि यशपाल के विरुद्ध कुछ न कुछ कदम उठाना ही पडेगा।

पण्डित जी ने कानपुर म अगस्त मे केन्द्रीय समिति की एक विशेष सभा बुलाई, जिसमे उपस्थित थे उनके अतिरिक्त पजाब से धनवन्तरी, दिल्ली से कैलाशपति और यू० पी० से वीरभद्र तिवारी और सतगुरदयाल अवस्थी। उस बैठक मे यशपाल के विरुद्ध आरोप रखे गए। यशपाल पर आरोप लगाया गया कि उसने प्रकाशो को अपने स्वार्थ के लिए उसके अभिभावको की इच्छा के विरुद्ध घर से निकाला। उसने दल को यह कह कर धोखा दिया कि प्रकाशो दल के लिए कई हजार रुपया लेकर आ रही थी जो रास्ते मे गिर गया और यह कि यशपाल ने प्रकाशो को उसके घर से निकाला था, दल के काम के लिए नहीं बल्कि अपनी विलासिता के लिये, विवाह करने के लिये जिसके लिये वह दल से अनुमति लेने के लिए बाध्य था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। यह तो दल के नियमो के अनुसार अपराध था। यह सभी की सम्मति थी कि यशपाल मे दल के काम मे सहायता न मिल उल्टी हानि ही हो रही है। दल की

भलाई इसी मे होगी कि यशपाल को गोली मार कर समाप्त कर दिया जाए। यशपाल को तार दे कानपुर बुलाया गया और उसके मारने का भार वीरभद्र तिवारी को सौंपा गया।

वैसे तो पण्डितजी स्वय इस कार्य को पूरा करते परन्तु वीरभद्र तिवारी को सौंपने मे भी एक भेद था। वीरभद्र दल का एक अतीव जिम्मेदार सदस्य था। यू पी का सगठनकर्ता था। यू पी के सभी सदस्य तथा ठिकाने उसे मालूम थे, जो वह पण्डित जी से छिपाता था। उसके पास दल के अनेक हथियार भी थे, जो वह पण्डित जी को कोई न कोई बहाना बना कर नही दिया करता था। उसका सम्बन्ध यू पी सी आई डी के इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ से था ही। वे दोनो एक ही मकान के दो भागो मे रहते थे। पण्डित जी ने ऐसा महसूस किया था कि तिवारी दल का अधिक साथ न दे सी आई डी का साथ दे रहा था। वह चाहते थे कि तिवारी से वह एक ऐसा काम, एक्शन, करा लें जिससे उसके लिए दल का छोडना अथवा सी आई डी का साथ देना असम्भव हो जाय। यही कारण था उन्होने वीरभद्र के जिम्मे यशपाल को गोली से मार ने का काम सौंपा।

परन्तु तिवारी चालाक व्यक्ति था। हो सकता है उसने स्वय या शम्भूनाथ के कहने पर यह निश्चय कर लिया हो कि वह दल के किसी ऐसे काम मे भाग न लेगा जिससे उसको भविष्य म बचना असम्भव या कठिन हो जाए। हो सकता है वह उस समय सी आई डी के हाथों मे खेल रहा हो।

वीरभद्र तिवारी ने केन्द्रीय समिति की सभा मे यशपाल को मौत की सजा देने का विरोध नही किया था। वह प्रस्ताव तो सर्वसम्मति से पास हुआ था। परन्तु वह स्वय इस कार्य-भार को अपने ऊपर नही लेना चाहता था और न ही सदैव की भाति वह कानपुर मे कोई एक्शन होने देना चाहता था जिससे उसकी निजी परिस्थिति बिगड जाये।

इसी कारण जब कैलाशपति ने यशपाल को दिल्ली से कानपुर भेजा तो तिवारी उसको अपने घर ले गया और उसे सब भेद बता रात ही की गाडी से कानपुर से रवाना कर दिया।

जब पण्डित जी को इस विश्वासघात का पता चला तो उन्होंने कैलाशपति को आज्ञा दी कि वह दिल्ली जा यशपाल को गोली मार दे। परन्तु दुख की बात थी, उसका भी उस समय काफी पतन हो चुका था। उधर तिवारी ने विश्वासघात किया, इधर कैलाशपति ने चाहा कि यशपाल को यदि वह दिल्ली

से भगा दे तो प्रकाशवती उसके हाथों पड़ जायगी। पर यह नहीं जानता था कि प्रकाशवती उसका साथ कभी भी न देती। वह यह भी भूल गया कि यशपाल उससे कहीं अधिक बुद्धिमान और चालाक व्यक्ति था। वह प्रकाशवती को तथा हथियार आदि साथ लेकर लाहौर चला गया और कैलाशपति मुंह ताकता ही रह गया।

लाहौर में यशपाल को मारने का भार धनवन्तरी को सौंपा गया। परन्तु धनवन्तरी ने अपने कर्तव्य में ढील दिखाई। यशपाल के कहने के अनुसार धनवन्तरी ने उससे मेल कर लिया। यशपाल के इस कथन में कुछ सन्देह दीखता है। वैशम्पायन और सुखदेव राज के कथनानुसार वे दोनों और धनवन्तरी उसको आजाद के कहने पर देहली लाये। आजाद ने यशपाल से यह मालूम कर लिया कि कानपुर में तिवारी ने ही उसको केन्द्रीय समिति का निश्चय बता उसे देहली लौटा दिया था।

आजाद ने महसूस किया कि यशपाल से अधिक तिवारी ने विश्वासघात किया है। यशपाल के विरुद्ध आरोप गम्भीर होते हुए भी एक बार क्षमा किये जा सकते थे या उसको दल से निकाला जा सकता था परन्तु वीरभद्र तिवारी की गद्दारी तो किसी भी प्रकार अनदेखी नहीं की जा सकती थी। यशपाल भी आजाद की इस राय से सहमत था।

आजाद ने यशपाल को तो क्षमा कर दिया परन्तु उसको और प्रकाशो को दल से बाहर निकाल दिया। यशपाल जानता था कि अब तक जो वह काम कर चुका था, उसके लिए दल के बाहर रहकर जीवन बिताना सुलभ न था। वह दल में ही रहने का इच्छुक था। उसने आजाद से वादा किया कि वह तिवारी को मौत के घाट पहुँचायेगा। आजाद को उस पर पूर्ण विश्वास नहीं था। उन्होंने स्वयं ही यशपाल के साथ जाने का निश्चय किया। वह जानना चाहते थे कि यशपाल कितने गहरे पानी में है। परन्तु निश्चित स्थान और समय पर तिवारी नहीं आया। क्या यशपाल ने तिवारी के पिछले एहसान का बदला चुका दिया था। सुखदेव राज का तो ऐसा ही विचार है और ३६ वर्ष पश्चात् यशपाल व तिवारी की सफाई वकालत से ऐसा आभास होता है कि सुखदेव राज की राय ठीक ही है।

परन्तु निजी तौर पर मुझे इसका कोई ज्ञान नहीं है और इसी कारण मैं अपनी कोई राय नहीं दे रहा हूँ।

यशपाल का इस प्रकार दल से नाता तोड दिया गया। परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि उसकी त्रुटियो के कारण दल मे कमजोरिया आ गई। उसी के कारण दल के दो जिम्मेदार सदस्यो ने पण्डित जी के प्रति विश्वासघात किया और जो आगे चलकर पण्डित जी की मृत्यु का कारण बना। पण्डित जी का विचार सत्य ही था कि दल मे स्त्रियो का कोई स्थान नही है।

यशपाल के काण्ड से पण्डित जी को एक घोर मानसिक आघात पहुँचा। वह खिन्न-चित हो दल से एक प्रकार अलग से रहने लगे। दल को भी वहुत कुछ अशो मे उन्होने छिन्न-भिन्न कर दिया। जितने भी शस्त्र एकत्रित किए थे उन्हे सभी प्रान्तो मे वाट स्वय कानपुर मे श्री रामचन्द्र मुसद्दी तथा श्रीमती भाभी के साथ उनके आर्य समाज, मेस्टन रोड वाले मकान मे रहने लगे। दिल्ली की साबुन फैक्टरी भी वन्द कर दी गई और वहा का सारा सामान कपूरचन्द जैन के मकान के तहखाने मे रख दिया गया। देहली मे केन्द्रीय समिति भग करने के पश्चात् आजाद कानपुर चले गये जहा वह रामचन्द्र मुसद्दी के यहाँ रहने लगे। पहले तो वहा सोते ही थे, खाना कही मिल जाता तो खा लेते वरना भूखे ही सो जाते थे। जब भाभी और मुसद्दी को इस वात का पता चला तो उन्होने आजाद से उनके घर खाना खाने का आग्रह किया। आजाद खाने भी लगे। उन दिनो मुसद्दी की आर्थिक अवस्था कुछ साधारण ही थी। कभी-कभी खाना पूरा नही होता था। ऐसे समय आजाद यह कहकर खाना नही खाते थे कि वह तो खा आये हैं।

परन्तु दल का उनको सदैव ध्यान रहता था। उन्होने गाडोदिया एक्शन के पश्चात् कानपुर के वुली वाजार मे एक मकान किराये पर लेकर वहा बम के खोल बनाने का कारखाना चालू कर दिया। दिन को तो कुछ और ही सामान बनता था परन्तु रात को खोल टाले जाते थे।

वीरभद्र व यशपाल के सम्बन्ध मे विश्वासघात के पश्चात् उन्होने यह कारखाना वन्द कर दिया था।

इस सम्बन्ध मे उनकी निर्भीकता के दो उदाहरण कुछ साथियो ने बताये हैं।

जब लाहौर षड्यन्त्र के समय आजाद फरार घोषित किए गये थे तो उनके पकडवाने के सम्बन्ध मे कुछ इनाम घोषित किया गया था। ऐसा एक इश्तहार कानपुर स्टेशन के समीप के थाने मे भी चिपकाया गया था। एक दिन आजाद एक ग्रामीण के वेश मे वहा पहुचे और पहरे पर सिपाही से पूछा,

"हवलदार साहब, इस इश्तहार मे क्या लिखा है।" उसने बता दिया। आजाद बोले, "हवलदार साहब कुछ हमे उनका नाम पता बता दो तो हम भी उनको पकड़वा कर दो हजार रुपये वसूल कर लें।"

दूसरा उदाहरण सुली बाजार मे बम फैक्टरी के सम्बन्ध मे है। जब आजाद ने इस फैक्टरी को बन्द करने का निश्चय कर लिया तो उनको पुलिस से मजाक करने की इच्छा हुई। वहा से लगभग सभी आवश्यक सामान हटा बम के कुछ खोल छोड मकान से चले गये और पुलिस को एक पत्र द्वारा उस फैक्टरी के सम्बन्ध मे एक पत्र डलवा दिया। पुलिस ने जब वहा छापा मारा तो सडक की दूसरी ओर साइकिल लिये आजाद पुलिस को उल्लू बनाने का आनन्द ले रहे थे।

पण्डित जी का क्रोध वीरभद्र तिवारी पर बढता ही गया, उन्हे यह तो यशपाल से मालूम हो गया था कि यशपाल को तिवारी ने कानपुर से भगा दिया था जिससे वह (तिवारी) कानून की पकड मे न आने पाये। यह तिवारी का पहला अवसर नही था जब उसने अपने आपको किसी प्रकार से कानून तोडने के जुर्म से बचने का सफल प्रयत्न किया था। पण्डित जी चाहते तो किसी भी समय बिना किसी आपत्ति के तिवारी के जीवन को समाप्त कर सकते थे। परन्तु अभी तक यू० पी० के सारे सुरक्षित स्थानो के पते, सदस्यो के नाम तथा सहानुभूति रखने वालो के नाम तथा पते तिवारी ही को मालूम थे। तिवारी को मार कर पडित जी को उनका किसी का पता नही मिलता। पडित जी इस कारण तिवारी से नाम तथा पते मालूम करने के प्रयत्न मे लगे परन्तु वह सफल न हुए। तिवारी ने चालाकी से न तो शस्त्र ही दिये और न ही नाम तथा पते बताये। पण्डित जी का विचार था कि यदि तिवारी उनका साथ देता तो वे उसको साधारण जीवन बिताने के लिए कह कर दल से अलग कर देते जैसा उन्होने यशपाल के साथ किया था। पण्डित जी की ओर से तिवारी सतर्क अवश्य हो गया। हो सकता है, उन्ही दिनो तिवारी ने पण्डित जी के साथ विश्वासघात करने का निश्चय भी कर लिया हो।

दल का पुनर्गठन

पण्डित जी, जिनके जीवन का प्रत्येक पल और घडी स्वाधीनता प्राप्त करने मे बीती थी, अधिक दिन चुप बैठने वाले नही थे। उन्होने शीघ्र ही निश्चय किया कि वह किसी न किसी प्रकार दल को विश्वसनीय साथियो की सहायता से फिर से चालू करें और दल मे अविश्वसनीय साथियो को सम्मिलित

न करें। दल के फिर से सगठन के कार्य के लिए उन्होंने वैशम्पायन (बच्चन) को अपने साथ लिया। दुर्गा भाभी भी उस समय कानपुर पहुच गई थी और पण्डित जी के साथ रामचन्द्र मुसद्दी के स्थान पर ही ठहरी हुई थी।

कश्मीर से मेरे लौटने के कुछ दिनो पश्चात् एक दिन सुशीला जी (दीदी) मेरे घर आई। मैं उनमे पहले नही मिला था, परन्तु उनका नाम अनेको बार पण्डित जी तथा अन्य साथियो से सुन रखा था। कश्मीर से लौटने पर मैंने कैलाशपति के आचरण अच्छे नही पाए। उसकी आचरणहीनता की कुछ बातें तो मैंने स्वय अपनी आखो से देख ली थी, विशेषकर उसका चन्द्रवती (कमला) के साथ अनुचित सम्बन्ध। मैं पण्डित जी से मिलकर उनको कैलाशपति की ओर से सावधान करना चाहता था परन्तु दिल्ली मे कैलाशपति के अतिरिक्त किसी दूसरे साथी को पण्डित जी का पता मालूम नही था और कैलाशपति ने मुझे पता बताने से इन्कार कर दिया था कि पण्डित जी की आज्ञा है कि उनका पता किसी को भी न बताया जाए।

सुशीला जी को भी कैलाशपति के दुराचारी होने का पता चल चुका था। वह भी उससे तग आ गई थी और किसी विश्वसनीय साथी की तलाश मे थी। जब वह मुझसे मिली तो दोनो ने ही पण्डित जी से मिल कर कुछ काम करने का निश्चय किया। दीदी को ज्ञात था कि पण्डित जी कानपुर मे रामचन्द्र मुसद्दी के यहा ठहरे हुए है। हम दोनो उसी रात गाडी से कानपुर चले गए। दीदी ने मुझे पहले ही कह दिया था कि वह पण्डित जी की आज्ञा के बिना उनके निवास स्थान पर नही ले जाएगी। हम तांगे मे माल रोड पर तार घर के सामने से जा रहे थे, देखा दूसरी ओर से पण्डित जी, दुर्गा भाभी तथा श्री मुसद्दी चले आ रहे है। पण्डित जी ने मुझे देखा। दीदी को तागे से उतार अन्य दोनो स्त्रियो के साथ कर दिया और स्वय मेरे साथ तागे मे बैठ सीधे मुसद्दी के निवास स्थान पर ले गए। कुछ देर बाद दोनो भाभिया तथा दीदी भी लौट आईं।

मैंने देखा पण्डित जी उस समय धन के अभाव से एक घोर सकट मे थे। तिवारी के साथ न देने से उनका धन सचार पूर्णतया बन्द हो गया था। थोडे ही समय मे किसी को सहानुभूतक बना उससे रुपया लेना असम्भव ही था और बिना धन के जीवन निर्वाह तथा दल का पुनर्संगठन असम्भव था। मनी एक्शन कर सकते थे परन्तु उस एक्शन की तैयारी के लिए भी तो रुपया चाहिये था।

नहर पार का मनी एक्शन

उन्ही दिनो सितम्बर १९३० मे कानपुर मे पण्डित जी के सम्पर्क मे एक युवक आया। उस युवक के पिता की गद्दी थी, जहा प्रत्येक दिन हजारो रुपये का लेन-देन होता था। युवक भावुक-सा था। उसने पण्डित जी से कहा कि क्यो न वह उसी के पिता की गद्दी पर धावा बोलें। युवक का अनुमान था कि एक ही धावे मे लगभग एक लाख रुपया मिल जाएगा। पण्डित जी ने सोचा कि यदि एक लाख रुपया एक ही समय में दल को मिल जाए तो एक ओर तो दल की आर्थिक समस्या हल हो जाएगी, दूसरी ओर तिवारी की ओर न ताकना पडेगा और वे भी निर्भीक हो, दल के सगठन करने मे सलग्न हो जाएगे।

इस एक्शन के लिए भी तो कुछ रुपये की आवश्यकता थी। कानपुर मे वह थोडा सा भी रुपया एकत्रित न कर सके। यदि मुसद्दी के पास होता तो वह अवश्य दे देते, परन्तु उन दिनो उनका भी पतला ही हाल था और फिर भी उन्होने निर्भीक हो अपना निवास स्थान तथा दाल रोटी पण्डित जी को अर्पण कर रखी थी और दोनो ही, मुसद्दी तथा श्रीदेवी मुसद्दी जेल जाने के लिए प्रस्तुत थे।

इन्ही दिनो मैं दीदी के साथ कानपुर जाकर उनसे मिला। पण्डित जी मुझसे लगभग चार-पाच घण्टे बातें करते रहे। दिल्ली के कार्य की भी बातचीत चली। मैंने उनको कैलाशपति के चरित्रहीन होने का हाल बताया और यह भी कहा कि वह दिल्ली के दल को लगभग तोड-सा चुका है और अब यह प्रयत्न कर रहा है कि किसी प्रकार दल के साधनो से रुपया तथा शस्त्र आदि प्राप्त कर चन्द्रवती को ले किसी दूर अज्ञात स्थान पर चला जाए। पण्डित जी ने मेरे कहने का आसानी से विश्वास नही किया। सच तो यह है कि वह किसी भी साथी के विरुद्ध कही हुई बात पर शीघ्र ही विश्वास नही किया करते थे। शायद अपने अनुभव मे ही उनकी यह आदत बन गई हो परन्तु इसी आदत के कारण वह अन्त मे अपना जीवन खो बैठ।

पण्डित जी ने मुझे एक लाख रुपये वाले एक्शन की योजना बताई और मुझसे पूछा कि क्या मैं कही से तीन सौ रुपये का प्रबन्ध कर सकता हू। मैने बताया कि मेरे पास नकद रुपया तो नही है परन्तु मेरे ताऊ ने मेरे नाम अपने मकान का आधा भाग कर रखा है, उसे बेच कर रुपया ला सकता हूँ। पण्डित जी ने उसी रात मुझे दिल्ली लौटा दिया और आज्ञा दी कि शीघ्र से शीघ्र रुपये का प्रबन्ध कर कानपुर लौट आऊ।

मैं एक सप्ताह मे रुपया लेकर कानपुर लौटा। रुपया ले पण्डित जी ने मुझे भी उस एक्शन मे भाग लेने के लिए कहा, परन्तु शाम तक उनका विचार बदल गया। उन्होंने भाभी और दीदी को भी मेरे साथ दिल्ली भेज दिया और आदेश दिया कि मैं मकान किराये पर लेकर भाभी तथा दीदी को अपने साथ लेकर रहू और कैलाशपति से शनै-शनै सब शस्त्र प्राप्त कर और सहानुभूतको के पते मालूम कर दल के भार को अपने हाथो मे ले लू। चलते समय उन्होंने मुझे भाभी तथा दीदी की रक्षा के लिए एक रिवाल्वर दे दिया था।

पण्डित जी के जीवन से सीधा सम्बन्ध न रखते हुए भी मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हूँ जो उस रात सियालदा एक्सप्रेस मे घटी। तीन इण्टर क्लास रेलवे टिकट थे, हम तीनो गाडी के एक इण्टर के डिब्बे मे चढ गए। लगभग रात के दस या ग्यारह बजे थे। डिब्बे मे तीन नीचे और दो ऊपर के बर्थ थे। नीचे के बर्थों पर तीन व्यक्ति चादर ताने सो रहे थे। ऊपर के एक बर्थ पर भी एक व्यक्ति सा रहा था और दूसरे बर्थ पर सामान रखा था। हम तीनों गाडी के डिब्बे मे खडे हो गए। रात भर की यात्रा थी, खडे-खडे जाना असम्भव था। मैंने बीच वाले बर्थ पर सोते हुए व्यक्ति को धीरे से हिला कर प्रार्थना की कि कम-से-कम स्त्रियो को तो बैठने के लिए थोडा-सा स्थान दे दे। उन साहब ने एक बार चादर से मुह निकाल हम तीनो को देखा और फिर चादर मुह पर तान ली। मैंने दूसरी बार फिर उसको हिलाया तो वह एकदम से उठा और खूंटी पर टगी हुई तलवार को मियान से निकाल मेरे छाती पर उसकी नोक लगा बोला, 'सीट नही मिलेगी, मौत मिलेगी।' मैंने पहले तो अचम्भे से उसको देखा और फिर उसी क्षण जेब से रिवाल्वर निकाल उसकी छाती की ओर कर उत्तर दिया, 'एक सीट नही तीन सीटें चाहिए।' वह साहब रिवाल्वर देखकर औसान खो बैठे। तलवार मियान मे डाल पूरा बर्थ खाली कर बोले, 'हाजिर है', और स्वय नीचे ही बिस्तरा बिछा सो गए। हम तीनो भी आराम के साथ दिल्ली पहुच गए।

उधर पण्डित जी ने हम लोगों के दिल्ली लौटने के दूसरे ही दिन नहर पार कच्छी की गद्दी पर धावा बोला। ऐसा प्रतीत होता है कि कच्छी का लडका घबरा गया और उसने उस दिन तीन बजे न भेजकर सारा रुपया बैंक मे दो ही बजे भिजवा दिया। परिणामस्वरूप पण्डित जी को बजाए एक लाख रुपय के केवल तीन हजार रुपया ही मिला और साथ ही एक दुखद घटना

भी फट गई। जब पण्डित जी ने मुनीम से रुपया मांगा तो मुनीम ने चीखना शुरू कर दिया। पण्डित जी ने डांट कर उसको चुप रहने के लिए कहा, परन्तु वह अधिक बल से चीखता रहा। पण्डित जी ने क्रोध में उसके गाल पर थप्पड़ मारा। वह थप्पड़ कुछ ऐसे जोर से लगा कि मुनीम की आँखें बाहर निकल आईं। पण्डित जी को उस घटना का पश्चाताप बहुत दिनों तक रहा। वह बिना किसी कारण के किसी व्यक्ति को मारने के विरोधी थे। लाहौर में भगतसिंह का पीछा करते हुए चाननसिंह को उन्होंने दो बार लौट जाने के लिए कहा था। इसी प्रकार गाडोदिया के सफल एक्शन में किसी को खरोंच-सी भी चोट नहीं आई थी। उनको तो इसका गुमान भी न था कि उनके एक थप्पड़ से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।

कैलाशपति

दिल्ली मे क्वीन्स रोड पर एक वकील श्यामजी मोहन सक्सेना रहते थे। वह कुमारी लज्जावती मुख्याध्यापिका, जालन्धर कन्या महाविद्यालय से परिचित थे। इसी महाविद्यालय की सुशीलादेवी भी स्नातिका थी, जो डिग्री प्राप्त कर कलकत्ते के एक मारवाडी परिवार की स्त्रियो को पढाने चली गई थी। वही भगतसिंह लाहौर मे साण्डर्स वध के पश्चात् उनके पास जाकर ठहरा था। लज्जावती जी भी थोडा-बहुत क्रान्तिकारियो से सम्बन्ध रखती थी। उन्होने श्यामजी मोहन से सुशीला जी को अपने घर मे छिपा कर सुरक्षित रखने की अनुमति ले ली थी। मैं जब कानपुर से भाभी और दीदी को लेकर दिल्ली लौटा तो कुछ दिन के लिए मैंने उन दोनो को वकील साहब के मकान पर छोड दिया था।

चार-पाच दिन पश्चात् मैंने मुहल्ले दस्सा मे एक मकान किराए पर ले लिया और वहा भाभी, दीदी और भाभी के सुपुत्र शचि को लेकर रहने लगा। यह बात लगभग २४ या २५ अक्तूबर १९३० की है। पण्डित जी का विचार भी दिल्ली आने का था, जहा वह कैलाशपति के चरित्र का अध्ययन स्वयं करना चाहते थे।

परन्तु कैलाशपति ने उस समस्या को स्वय ही हल कर दिया और पण्डित जी को दिल्ली आने की आवश्यकता न पडी।

यह तो मैं पहले ही बता चुका हूं कि कैलाशपति आजमगढ के पोस्ट आफिस से ३,२०० रुपया लेकर भागा था और ५०० रुपये अपने पिता को

भेज शेष रुपये समेत दल के काम मे जुट गया था। आरम्भ मे वह उत्तर प्रदेश और दिल्ली के बीच कडी बनकर काम करता रहा। भगतसिह की गिरफ्तारी के पश्चात् वह दिल्ली मे ही रहने लगा था और पण्डित जी ने उसको दिल्ली दल का सचालक बना दिया था। उसने कुछ दिन मन लगा कर दल मे सगठन का काम किया। मेरा दल से परिचय तो काशीराम ने कराया था परन्तु दल मे पूर्णतया लाने वाला कैलाशपति ही था।

लाहौर वाले भगतसिह षड्यन्त्र केस मे दिल्ली कर्मशियल स्कूल के व्यायाम के अध्यापक सूरजबली को पुलिस लाहौर ले गई थी और उसको खूब मार-पीट कर कुछ भेद मालूम करने चाहे थे। परन्तु जानते हुए भी सूरजबली ने कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया था। पुलिस ने उसको छोड दिया था। जब वह दिल्ली लौटा तो दल के कुछ सदस्य उससे मिले, उनम कैलाशपति भी था। सूरजबली मुहल्ले दस्सा के पास छत्ता सूफीजी के समीप रहता था। उसकी पत्नी चन्द्रवती भी वही रहती थी। चन्द्रवती अधिक शिक्षित नही थी। उसका रग भी काला था, परन्तु छवि कुछ बुरी नही थी। खादी पहनती थी और पर्दा नही करती थी।

कैलाशपति का आना-जाना उस घर मे हो गया था। उस समय वह मेरे पास हिन्दू कालेज होस्टल मे रहता था और उसके सारे खर्चे का भार मेरे ऊपर ही था। वह दिन भर शहर मे घूमता फिरता था परन्तु शाम को मेरे पास आ जाता था। इन्ही दिनो उसका परिचय मास्टर सूरजबली और चन्द्रवती से हो गया था। कुछ दिनो बाद जब पण्डित जी मेरे साथ होस्टल मे रहने लगे थे तो कैलाशपति ने शहर मे कही रहने का प्रबन्ध कर लिया था। परन्तु दिन मे एक या एक से अधिक बार वह मुझसे मिल लेता था। अपना खर्च तो वह मुझसे ही लेता था।

फरवरी मे मुझे मोतीझारा (टाइफाइड) हुआ। पहला दौरा ३२ दिन रहा फिर एक दिन ज्वर उतर दूसरे दिन फिर से ज्वर चढा, यह रिलैप्स लगभग आठ महीने मुझे सताता रहा। मैं २४ मार्च १९३० तक होस्टल मे रहा। पण्डित जी पूरे समय मेरे साथ रहे और मेरी देख-भाल ही नही की, वरन् डाक्टर के यहा से दवा आदि भी लाते रहे। कैलाशपति भी लगभग प्रत्येक दिन आता रहा। २४ मार्च को मैं अपनी बहन के घर चला गया और पण्डित जी होस्टल मे दल के एक दूसरे सदस्य भवानीसिह के साथ रहने लगे। परन्तु वह हर रोज मुझे देखने आते थे। मेरी बहन, बहनाई तथा भान्जो और अन्य मित्रो

से भी उनका परिचय हो गया था। बहन से तो वह अरहर की दाल और चावल की दावत प्राय खाते रहते थे। कैलाशपति भी मुझे देखने घर बारबार आता रहा। यह क्रम जून १९३० तक चलता रहा। उन दिनों कैलाशपति कहा रहता था मुझे पता नहीं।

गाडोदिया मनी एक्शन के पश्चात् पण्डित जी मुझे कश्मीर भेज कर स्वय कानपुर चले गए। कश्मीर से लौटने पर मुझे पता चला कि कैलाशपति ने औगढवाली गली, बाजार सीताराम मे मास्टर हरिद्वारीलाल के मकान का ऊपर का भाग किराए पर ले लिया था जहा वह चन्द्रवती को साथ लेकर रह रहा था। मैंने मास्टर सूरजबली से बात की तो पता चला कि चन्द्रवती मास्टर जी को छोड कैलाशपति के साथ ही रहने लगी है। आखिर मास्टर जी तो धनहीन थे। केवल २५ या ३० रुपये मासिक वेतन था। उधर कैलाशपति के पास दल का रुपया था। १७० रुपये मासिक ता केवल मेरे से लेता था। ३० रुपये मासिक चतुर्भुज डिडवानिया से लेता था। उसके तो रुपया लेने के अनेक सूत्र थे जो मुझे मालूम न थे। मुझे यह बात बुरी लगी और मैं एक दिन लगभग प्रात १० बजे उसके घर गया। मैंने जो दृश्य अपनी आखो से देखा दुखी भी हुआ और क्रोध भी आया। उन दोनों को अपने आने का परिचय दे जब मैं कमरे मे गया तो देखा कि एक ओर खादी की लगभग २०-२५ साडिया तथा ४०-५० जम्फर रखे हुए थ। मैं चकित रह गया और दुख से मेरी आखो के आगे अंधेरा छा गया। मेरे दुखी होने का कारण था।

मैं जब हिन्दू कालेज दिल्ली मे लैक्चरर नियुक्त हुआ था तो मेरा मासिक वेतन २०० रुपये था। साथ ही मैं कालेज के होस्टलो का सुपरिण्टेण्डेण्ट भी बनाया गया था। होस्टल मे मुझे एक बडा और दो छोटे कमरे दिये गये थे और कालेज की ओर से एक नौकर। अविवाहित होने के कारण मैंने खाने का अलग प्रबन्ध न किया, होस्टल के मैस म ही खाता था। उसी मैस से कैलाशपति और पण्डित जी का भोजन आता था। मैं केवल एक ही समय भोजन करता था और खाने का मासिक खर्चा केवल लगभग १२-१४ रुपये आता था। मैं अपनी दूसरी आवश्यकताओं के लिए दस रुपये रख शेष दल को कैलाशपति द्वारा दे दिया करता था। खादी पहनने के कारण कपडो पर खर्च बहुत ही कम था और साइकिल होने से गाडी भाडा भी बच जाता था। कैलाशपति ने मुझे बताया था कि दल के सदस्यो के लिए (केवल दिल्ली मे) लगभग ४००-५०० रुपये मासिक की आय की आवश्यकता है। मैं यही समझ

इससे पहले मैं लिख चुका हू कि यशपाल ने लार्ड इरविन की ट्रेन पर बम छोडा था परन्तु सी० आई० डी० किसी भी व्यक्ति को उस काण्ड के सबध मे पकडने मे असमर्थ रही थी। पुलिस के भारी इनाम की घोषणा का परिणाम भी व्यर्थ जा रहा था। स्काटलैण्ड यार्ड के चार आफिसर भी इसी सम्बन्ध मे २-३ महीने भारत मे रहकर खाली हाथ यू० के० लौट गए थे। तत्पश्चात् यू० के० से मि० पील तफतीश के लिए भारत भेजे गये थे। उनका नाम, पता तथा उनकी पद्धति को छिपाये रखा था। यहा तक कि उनके पास दो टेलीफोन होते हुए भी डाइरेक्टरी मे उनका नाम भी नही था। परन्तु कानपुर मे वीरभद्र तिवारी को उसका नाम शम्भूनाथ सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर से मालूम हो गया था। पता भी उसने रोशनारा रोड का कहला भेजा था। कोठी थी 'दिलकुश'। वह पता कैलाशपति को मालूम था। उसने कर्मसिंह को पील को सूचना देने के लिए कहा। हो सकता है कि वीरभद्र तिवारी और कैलाशपति दोनों ने ही दल को छोडने का निश्चय कर लिया था और तिवारी ने कैलाशपति को पील का पता इसीलिये भेजा हो कि जिससे वह अपने आपको उसी के हवाले सौप दे।

कैलाशपति सुलतानी गवाह

कैलाशपति ने अपने पकडे जाते समय सरदार कर्मसिंह से चन्द्रवती को न पकडने के लिए कहा था। थाने पर ले जाने पर भी उसने यही प्रार्थना की थी कि चन्द्रवती को छोड दिया जाए। यह उसकी कमजोरी थी जिसका पुलिस ने पूर्णतया लाभ उठाया। उसने बजाए छोडने के चन्द्रवती के साथ दुर्व्यवहार करने की धमकी दी। और यदि मि० सूरजबली का कथन ठीक है जो उन्होंने मुझे बाद मे बताया था कि पुलिस ने सत्य ही उसके साथ कैलाशपति के सम्मुख कुछ दुर्व्यवहार किया भी था। उस रात दोनो को दो पृथक् कमरो में बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन पील कैलाशपति से वही मिला। कैलाशपति ने उनसे वादा किया कि यदि वह चन्द्रवती के विरुद्ध कोई अभियोग न चलाए और उसको छोड दें तो वह पुलिस को दल का पूरा भेद बता देगा। पील ने आश्वासन दिया कि वह चन्द्रवती को छोड ही नही देगा उसको कैलाशपति के साथ पूर्ण स्वाधीनता के साथ रहने देगा, यदि वह पुलिस को क्रांतिकारी दल के सब भेद बता देगा तथा दल के सदस्यो को पकडवाने मे सहायता करेगा। कैलाशपति ने वचन दिया और इस प्रकार दिल्ली षड्यन्त्र केस का आरम्भ हुआ।

मुझे कैलाशपति के पकडे जाने की सूचना भवानीसिंह ने २६ अक्तूबर

को प्रात काल दी। मैंने उसी दिन पण्डित जी को कानपुर लिख दिया और उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

धनवन्तरी की गिरफ्तारी

कैलाशपति के पकडे जाने के समय मैं दीदी, भाभी तथा शचि को साथ ले मुहल्ला दस्सा मे रह रहा था। वहा सूचना आई कि धनवन्तरी और सुखदेव राज लाहौर से पहली नवम्बर को दिल्ली आकर हमसे मिलेंगे। वे दोनो पण्डित जी से मिलने कानपुर जा रहे थे। उन दोनो को हमने एक अन्य स्थान पर मिलने को लिख दिया था। ये दोनो बजाय पहली नवम्बर के ३१ अक्तूबर को ही दिल्ली पहुच गये। वे हमारे निवास स्थान से अनभिज्ञ थे, चादनी चौक मे घूमने लगे। धनवन्तरी लाहौर से फरार था और पुलिस ने उसके पकडने के लिए इनाम भी घोषित कर दिया था। उस पर आरोप था कि उसने लाहौर मे अक्तूबर मास मे लारेन्स गार्डन मे अब्दुल अजीज़, सुपरिण्टेण्डेण्ट सी० आई० डी० लाहौर पर गोली चलाई थी। यह सत्य होते हुए भी पुलिस के पास प्रमाण कुछ नही थे। लाहौर की सी० आई० डी० के कुछ आदमी धनवन्तरी की तलाश मे दिल्ली आये हुए थे। उनमे से एक ने धनवन्तरी और सुखदेव राज को चादनी चौक घण्टाघर के पास पहचान लिया और उनका पीछा करने लगा। यह दोनो भी ताड गये और फतेहपुरी की ओर तीव्र गति से चलने लगे। उसने भी अपनी गति बढा दी। अब दोनो ने भागना शुरू किया। सी० आई० डी० का आदमी भी उनके पीछे 'चोर, पकडो चोर' चिल्लाता हुआ भागा। चादनी चौक मे चलने वाले अनेक लोग, 'चोर-चोर' की ध्वनि सुनकर उन दोनो का पीछा करने लगे। उनमे एक सिपाही भी था। धनवन्तरी ने दोनो को घिरा देख कर जेब से पिस्तौल निकाल पीछा करने वाले एक सिपाही पर गोली चला दी। गोली सिपाही की छाती पर लटकी हुई सीटी से टकरा दूसरी ओर चली गई और सिपाही को कुछ भी चोट नही लगी। परन्तु धनवन्तरी अब घिर चुका था और जनता ने उसे चोर समझ कर मारना शुरू कर दिया था। पुलिस ने इतने म उसे पकड लिया।

इस झगडे और गडबड का लाभ उठा सुखदेव राज चुप से खिसक सामने की डाक्टर हरीराम (रायसाहब) की दुकान मे जा छिपा। धनवन्तरी का गिरफ्तार करने के पश्चात पुलिस सुखदेव राज की खोज मे लगी। लोगो ने उनको हरीराम की दुकान में घुसते हुए बताया। पुलिस ने डाक्टर हरीराम से पूछा कि कोई व्यक्ति उनकी दुकान म तो नही छिपा है। डाक्टर साहब ने

सचमुच नही देखा था। पुलिस ने उनसे अपनी दुकान देखने के लिए कहा। डाक्टर देखने के लिए एक किवाड के पीछे भुके तो सुखदेव राज को पिस्तौल खीचे हुए देखा। डाक्टर साहब डर गए और लौटकर पुलिस से कह दिया कि उनकी दुकान के अन्दर कोई व्यक्ति नही है। सुखदेव राज दुकान के अन्दर के जीने से ऊपर चढ कुछ छतो को पार कर डाक्टर युद्धवीरसिंह के मकान मे जा पहुचा और वहा से रात को निकल नई दिल्ली चला गया। दूसरे दिन वह हम लोगो से आ मिला।

धनवन्तरी को पकडे जाने के बाद दिल्ली की कोतवाली मे बन्द रखा गया, जहा उसके बडे भाई विद्यानन्द जी उससे मिले। धनवन्तरी को २ नवम्बर को ही कुछ सिपाहियो से मालूम हो गया कि कैलाशपति ने भेद खोलने शुरू कर दिये है। उसने विद्यानन्द द्वारा हमे सन्देशा भेजा कि हम पण्डित जी को सतर्क कर दें।

भाभी तथा दीदी विद्यानन्द और सुखदेव राज के साथ लाहौर चली गई। मैंने मकान का सारा सामान मास्टर सूरजबली को दे दिया और स्वय कानपुर जा पण्डित जी को दिल्ली का तथा कैलाशपति के भेद खोलने का समाचार दिया। पण्डित जी को कैलाशपति के सुलतानी गवाह बनने का फिर भी विश्वास नही हुआ। उन्होने वैशम्पायन को बनारस विद्याभूषण का पता लाने के लिए भेजा। यह वही विद्याभूषण था जिसने दिल्ली मे गाडोदिया स्टोर मे मनी एक्शन मे भाग लिया था और इसका पता दिल्ली मे केवल कैलाशपति को ही मालूम था। वैशम्पायन ने बनारस से लौटकर बताया कि विद्याभूषण पकड लिया गया है। पण्डित जी के मुख से उस समय केवल ठण्डी सास के साथ यही शब्द निकले "ठण्ड ने हग भरा"। (कैलशपति का दल का नाम शीतल था और शीतल ठण्डे को कहते है)।

पंडित जी के अंतिम दिनों में मैं उनके साथ

जब वैशम्पायन ने विद्याभूषण के पकडे जाने की सूचना दी थी उस समय मैं पडित जी के साथ कानपुर मे विक्रमाजीत पार्क (कचहरी के सामने) मे बैठा हुआ था। मैंने देखा पण्डित जी उस समय बहुत ही दुखित हुए थे और क्यो न होते? जिन पर उनको अटूट विश्वास था, जो दल के नेता थे और अन्य युवको को दल मे भर्ती करते थे, वे पकडे जाने पर धोखा दे जाते थे। बिहार का फणीन्द्र घोष, लाहौर का सुखदेव और अब दिल्ली का कैलाशपति एक से एक जिम्मेदार व्यक्ति थे। फणीन्द्र घोष लाहौर षड्यन्त्र केस मे सुलतानी गवाह बन गया था, सुखदेव ने पकडे जाने के पश्चात् ही भेद खोल दिये थे और कैलाशपति तो मानो इस समय की बाट जोह रहा था कि कब वह पकडा जाए और कब वह दल के भेद खोले। उधर यशपाल और वीरभद्र तिवारी का काण्ड भी उनके सामने ही था, अभी तीन ही महीने तो उस काण्ड को हुए बीते थे। पण्डित जी का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

परन्तु यह पहला आघात तो न था। पण्डित जी के जीवन मे तो आरम्भ से ही ऐसे आघात एक के बाद एक आते रहे थे और वह क्षण भर विचलित हो फिर अपने जीवन के ध्येय की पूर्ति मे लग जाते थे। अब भी उन्होंने साहस नहीं छोडा, हिम्मत नहीं हारी। दल के पुनर्संगठन करने मे व्यस्त हो गए।

नहर पार कचहरी की गद्दी पर मनी एकशान से पूर्व उन्होने रामचन्द्र मुसद्दी के यहा रहना छोड दिया था। श्री मुसद्दी और श्रीमती मुसद्दी दोनो ही

कांग्रेस सत्याग्रह मे जेल चले गये थे। उन्होंने सिविल लाइन्स मे ही ठीक पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट के आफिस के सामने डाक्टर मुरारीलाल रोहतगी के मकान की बाहर वाली बैठक किराए पर ले ली थी। डाक्टर साहब का उनसे परिचय न था इसी कारण बैठक किराए पर लेने मे कोई असुविधा नही हुई। वैशम्पायन और मैं पण्डित जी के साथ उसी बैठक मे रहने लगे। सोने को जमीन का बिस्तर था और खाना पडौस के हलवाई के यहा से एक समय पूरिया आ जाती थी। रुपये के अभाव मे दूसरे समय पानी पीकर निर्वाह करते थे। पण्डित जी के पास यदि कही से पैसे आते भी तो वह तुरन्त पिस्तौल या रिवाल्वर खरीद लिया करते थे। वह ठेठ जाडो मे भी मलमल की धोती, आधी बाहों वाली लट्ठे की कमीज और ठण्डा कोट तथा पाव मे चप्पल पहना करते थे। मैंने एक बार उनको कम से कम एक गर्म कपडा बनवाने के लिए कहा तो उन्होंने अपने सन्दूक मे से १६ रिवाल्वर, पिस्तौल, बन्दूक तथा राइफल निकालकर कहा, यह फिर कहा से आएगे? यह भी बोले 'जब तक ३७ और दल के सदस्य ठण्डे कपडो मे अपना निर्वाह कर रहे है मैं गर्म कपडे कैसे पहन सकता हू।' मैं चुप हो गया। मेरे पास भी तो केवल एक गर्म कोट ही था। वह उनके लिए छोटा पडता था और मुझसे उनमे कही अधिक सहन शक्ति थी।

पति के साथ थाने मे रहने दिया। उसके बयानो से दल के सदस्यो की गिरफ्तारिया होने लगी। पण्डित जी को एक और कठिन समस्या का सामना करना पडा। वह था दल के साथियों को उनके पुराने स्थानो से हटा नए स्थानो पर ले जाना। परन्तु पण्डित जी तो अभी तक इतने साधन एकत्रित नही कर पाए थे।

इधर वीरभद्र तिवारी को जब इस बात का ज्ञान हो गया कि आजाद को उसके विश्वासघात का पता हो गया है तो वह काग्रेस सत्याग्रह मे जेल चला गया जहा उस समय रामचन्द्र मुसद्दी भी थे। दोनो एक दूसरे से भली भाति परिचित थे और वीरभद्र मुसद्दी के घर प्राय. आया-जाया करता था।

वीरभद्र फैजाबाद जेल मे था जब कैलाशपति पकडा गया और उसने पुलिस के सम्मुख अपने बयान देने आरम्भ कर दिये थे। उसने वीरभद्र का भी पूरा कच्चा चिट्ठा उनके सामने रख दिया था।

मुसद्दी के कथनानुसार सी० आई० डी० इस्पेक्टर उससे फैजाबाद जेल मे मिला। मुसद्दी के ही अनुसार नौटबावर भी वहीं उससे मिला।

शीघ्र ही तिवारी को फैजाबाद जेल से मलक्का जेल इलाहाबाद मे भेज दिया गया वहा उस समय वैशम्पायन भी जेल मे था।

एक दो दिन बाद ही वीरभद्र को जेल से छोड दिया गया।

एक ओर कैलाशपति के बयानो के आधार पर दल के छोटे से छोटे सदस्य पकडे जा रहे थे दूसरी ओर उसके बयान वीरभद्र के सम्बन्ध मे होते हुए भी उसको जेल से छोड दिया गया।

यशपाल लाख प्रयत्न करें कि वीरभद्र ने आजाद के प्रति विश्वासघात नही किया किन्तु उनके पास भी वीरभद्र को छोडने और उसको गिरफ्तार न करने के कोई भी कारण या सुझाव नहीं हैं।

सालिग्राम शुक्ल की मृत्यु

कुछ समय पहले लाहौर षडयन्त्र केस के अभियुक्त सुरेन्द्र पाण्डे केस से छूट कानपुर आ गए थे। उन्होने पण्डित जी से सम्पर्क भी बना लिया था। सालिग्राम शुक्ल, जिसका दल का नाम 'पहाडी' था, कुछ दिनो से फरार था और पुलिस उसको गिरफ्तार करने मे प्रयत्नशील थी। वह भी पण्डित जी से मिलता रहता था। पण्डित जी ने दल की दिनचर्या के अनुसार निश्चय किया कि पहली दिसम्बर १९३० को वह, वैशम्पायन, सुरेन्द्र पाण्डे, मैं और सालिग्राम शुक्ल कानपुर से दस पन्द्रह मील दूर जगल मे शूटिंग का अभ्यास करेंगे। पाण्डे

और शुक्ला से कहा गया कि वे पाचो का खाना लेकर प्रात साढे पाच बजे ग्रीन पार्क के सामने मिलें।

पाण्डे और शुक्ला के पास साइकिले थी। हम तीनो के पास केवल दो ही साइक्लिें थी। हम तीनो ठीक साढे पाँच बजे ग्रीन पार्क न पहुँच पाये। १५ मिनट या कुछ अधिक देर हो गई थी। अभी अन्धेरा ही था। मैं साइकिल दाईं ओर चला रहा था। दूसरी साइकिल पण्डित जी चला रहे थे और वैशम्पायन उनके पीछे बैठा था। जब हम ग्रीन पार्क से मिले हुए ऑक्जिलियरी फोर्स के आफिस के सम्मुख से जा रहे थे तो मैंने सडक के किनारे एक लाश देखी और पण्डित जी को चेतावनी दी। पण्डित जी ने मुझे तीव्र गति से साइकिल चलाने को कहा। दस गज आगे मैंने बाईं ओर एक साइकिल, एक टिफिन कैरियर और कपडे का अपना थैला, जिसमे तीन रिवाल्वर पडे थे, देखा। यह थैला पाण्डे ने मुझसे ३० नवम्बर को लिया था। मैंने साइकिल धीमी की, इस विचार से कि कम से कम थैला उठा लू। परन्तु पण्डित जी ने भाप लिया और तेज़ स्वर मे बोले, "साहब तेज करो अपनी साइकिल को, क्या तुम नही जानते कि हम सबके जीवन खतरे मे हैं।" मैंने कहा, "भाई साहब, हमारे तीन रिवाल्वर व्यर्थ जा रहे हैं।" उन्होने कहा, "कोई परवाह नही।" और हम तीनो इस प्रकार एक साथी की लाश को देखते हुए भी वही छोडकर चले गये। यदि उस समय हम कुछ और करते तो कदाचित अनुचित ही होता और हम तीनों के जीवन खतरे मे पड जाते। कारण, सहायक सेना के बगले मे एक गोरा राइफल लिए हुए पहरा दे रहा था और वह हम लोगो को भी देख रहा था। यदि हम वहा ठहरते, रुकते या थैला आदि उठाते तो उसको सन्देह हो जाता। कुछ दूर ही हमें पुलिस का एक दस्ता उसी ओर जाता हुआ मिला। अच्छा हुआ कि न तो उसने हमको रोका और न ही टोका वरना इतिहास कुछ दूसरा ही होता और पण्डित जी की जीवनी भी कोई दूसरा ही लिखता।

सुरेन्द्र पाण्डे से मिलने पर पता चला कि सालिग्राम शुक्ला की मृत्यु किस प्रकार हुई थी। सुरेन्द्र पाण्डे और शुक्ला लगभग प्रात सवा ५ बजे ग्रीन पार्क के सामने पहुच गये थे। वे दोनो वही अन्धेरे मे खडे होकर हम तीनो की प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय पुलिस का एक दस्ता वहा से गुजरा। वह दस्ता डी० ए० वी० कालेज के होस्टल मे काग्रेस द्वारा चलाये हुए आन्दोलन के सम्बन्ध मे किसी विद्यार्थी की तलाशी लेने जा रहा था। दस्ते का नेता एक ब्रिटिश सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस था। वैशम्पायन के अनुसार पुलिस डी० ए० वी०

कालिज के होस्टल मे गजानन राय पोद्दार को पकडने गई थी। उसका नाम और पता कैलाशपति ने पुलिस को बताया था परन्तु पोद्दार तो वहा से पहले ही लखनऊ चला गया था। शम्भूनाथ, इन्स्पेक्टर सी आई डी तथा अन्य आठ-दस पुलिस के सिपाही थे। उनमे से किसी के भी पास किसी प्रकार का शस्त्र नही था। क्योकि उनको काग्रेसियो से किसी भी प्रकार की आपत्ति का भय नही था। सी आई डी सबइन्स्पेक्टर शम्भूनाथ शुक्ला को पहचानता था और यह भी जानता था कि कुछ दिनो से शुक्ला छिपकर काम कर रहा है। वह जब इन दोनो के समीप से गुजरा तो उसने शुक्ला को पहचान लिया। उसने हसते हुए कहा, "कहो शुक्ला जी, इतने दिन कहा रहे" और यह कहते-कहते पीछे की ओर हो उसने शुक्ला को कौली भर कर पकड लिया और तीव्र स्वर मे बोला, "यह सालिग्राम शुक्ला क्रान्तिकारी है और कई महीनो से भागा हुआ है।" शुक्ला ने अपने को छुडाने का प्रयत्न किया पर सफल नही हुआ। पाण्डे कुछ दूर खडा भौचक्का हो इस दृश्य को देख रहा था, शुक्ला ने उच्च स्वर मे कहा साथी होशियार (Comrade Beware)। उसने किसी न किसी तरह अपने हाथ ढीले कर अपनी दाई जेब से रिवाल्वर निकाल लिया और बाहे पीछे से जकड कर पकडी हुई होते हुए भी सामने की ओर दो फायर किये। एक गोली तो एक सिपाही के लगी जो मर गया और दूसरी गोली पुलिस के सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट के घुटने मे लगी। इसी कशमकश मे पाण्डे अपनी साइकिल पर बैठ वहा से चलता बना। जब शुक्ला पुलिस के वश मे न आ पाया तब ब्रिटिश सहायक सुपरिण्टेण्डेण्ट, सहायक सेना के गोरे के पास जाकर बोला कि पुलिस ने एक भयकर डाकू को पकड रखा है, जो उन पर गोली चला रहा है। उसने उस गोरे सिपाही से 'डाकू' को गोली मारने के लिए कहा। उस गोरे ने पीछे से शुक्ला के कान पर राइफल की नली रख गोली चला दी। शुक्ला की मृत्यु तत्क्षण हो गई और पुलिस ने उसकी लाश उसके रिश्तेदारो को न दे स्वय ही जला दी।

पाण्डे के जाने के पश्चात् का शेष काण्ड शम्भूनाथ ने मुझे मेरी गिरफ्तारी के पश्चात् बताया था। उसने तो यह भी बताया था कि शुक्ला का हृदय बहुत बडा था और सहायक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट शुक्ला की वीरता की बहुत प्रशसा करता था। उस दिन शाम को कानपुर निवासियो ने तिलक पार्क मे एक सार्वजनिक सभा मे शुक्ला की वीरता तथा कर्तव्यपरायणता की प्रशसा की और उसकी मृत्यु पर शोक का प्रस्ताव पास किया।

मेरी गिरफ्तारी

२३ नवम्बर १६३० तक मै और वैशम्पायन पण्डित जी के साथ डाक्टर मुरारीलाल वाले मकान की बैठक मे रहते रहे। उस दिन पण्डित जी ने मेरा प्रबन्ध नवाबगज मे श्री श्रीवास्तव के यहा कर दिया। यह सज्जन गणेशशकर विद्यार्थी के पत्र 'दैनिक प्रताप' के सहायक सम्पादक थे। वहा मैं पुस्तको का अध्ययन करने लगा। पण्डित जी ने मुझे गनकाटन और पिक्रिक एसिड बनाने का फार्मूला अध्ययन करने के लिए भी आज्ञा दी। मैं प्रतिदिन दस साढे दस बजे नवाबगज से नगर मे आकर गयाप्रसाद पुस्तकालय मे शाम के पाच बजे तक पढता रहता था।

३० नवम्बर की रात को मैं पण्डित जी के साथ ही सोया। दूसरे दिन सालिग्राम शुक्ला की मृत्यु-काण्ड के पश्चात् पण्डित जी ने मुझे नवाबगज लौटने के लिए कहा और आदेश दिया कि उनकी आज्ञा बिना नवाबगज न छोडू। परन्तु मुझसे उस आज्ञा की अवहेलना हुई। मैं उसी सन्ध्या तिलक पार्क की सभा मे गया। उस सभा मे अचानक मुझे केशवदेव गुप्ता मिला। यह गुप्ता उससे पहले मुझे अजमेर मे मिला था।

मैं अपने सम्बन्ध मे इस पुस्तक मे कुछ लिखना नही चाहता। यह जीवन कथा पण्डित जी की है, मेरी नही। परन्तु केशवदेव गुप्ता के सम्बन्ध मे कुछ लिखना ही पड रहा है, वरना पण्डित जी की जीवनी का अन्तिम भाग मै न लिख पाऊगा। पाठको से क्षमा प्रार्थी हूँ।

काकोरी केस के मुलजिमो मे से एक शिवचरणलाल भी था जो उसके

पश्चात् मथुरा तथा अजमेर मे शिवचरणलाल शर्मा के नाम से रहता था। इस शिवचरण का सम्बन्ध काकोरी षड्यन्त्र केस से था। वह इस अभियोग मे सन्दिग्ध कारणो से अभियुक्त नही बनाया गया था। दल के पास सबूत थे कि उसने दल के प्रति विश्वासघात किया था। उसका कोई निर्वाह साधन न होते हुए भी वह मथुरा तथा अजमेर की कांग्रेस कमेटियो का सभापति हो गया था। उसको अपने जीवन का सदैव भय था कि किसी दिन कोई क्रान्तिकारी उसको गोली न मार दे। इस कारण वह कुछ दिन मथुरा ठहरता था और कुछ दिन अजमेर। दोनो ही स्थानो पर वह पुलिस तथा सी० आई० डी० से छिप कर मिलता रहता था। पण्डित जी उसको भलीभांति जानते थे और उनको उसके मथुरा तथा अजमेर आने जाने का तथा उसका कांग्रेस की नेतागिरी का हाल अच्छी तरह ज्ञात था।

सितम्बर १६३० मे पण्डित जी ने मुझे कानपुर बुलाकर एक ३८ बोर का रिवाल्वर और छ गोलिया दी और कहा कि मैं अजमेर जाकर शिवचरण-लाल शर्मा को गोली मार दू। साथ ही यह भी कहा था कि उसको मारने से पहले मैं अजमेर से दल के सभी सदस्यो को बाहर भेज दू जिससे उन पर सन्देह न हो और वे पकडे न जा सकें। इनमे मदनगोपाल, रुद्रदत्त और राम-चन्द्र नरूदि बापट भी थे। विमलप्रसाद जैन को मुझे मदनगोपाल से मिलवाने के लिए साथ भेजा। मुझे आदेश था कि शिवचरणलाल शर्मा को मार कर यदि मैं बच सकू तो ठीक वरना पुलिस से लडते हुए वही अपनी जान दे दू।

मैं सितम्बर के तीसरे सप्ताह मे विमलप्रसाद जैन का साथ ले अजमेर पहुचा। वहा विमल के एक मित्र थे बालकृष्ण कौल बीमे का काम करते थे और कांग्रेस मे भी भाग लेते थे। हम दोनो उन्ही के यहा जाकर ठहरे। उनका निवासस्थान स्टेशन के समीप ही कचहरी रोड पर था। थोडी देर बाद विमल मुझे मदनगोपाल से मिलाने उसके फार्म पर ले गया। (यह वही मदनगोपाल था जो लाहौर तथा दिल्ली षड्यन्त्र केसो मे सुलतानी गवाह बन गया था परन्तु दिल्ली केस मे उसने मुझे पहचान कर आखो-आखो मे इशारा कर दिया था कि वह मेरा अजमेर वाला भेद नही खोलेगा)। वहा मैंने उसको अपनी अजमेर यात्रा का अभिप्राय बताया और उससे शिवचरणलाल शर्मा को पहचनवाने का प्रबन्ध करने को कहा। मैंने उससे यह भी पूछा कि दल के और कितने सदस्य अजमेर मे है जिनको अजमेर से बाहर भेजा जाए। उसने मुझे दोपहर को एक बन्द कोठी मे बुलाया। यह कोठी बगरहट्टा के नाम से ली हुई थी। फरनीचर

भी किराए पर लिया हुआ था। न कोठी का किराया दिया जाता था और न ही फरनीचर का। बाहर से उसमें सदैव ताला लगा रहता था जिससे न मालिक मकान ही कुछ बोल सके और न ही फरनीचर का मालिक किराया पा सके या फरनीचर ही उठा सके। पीछे से यार लोगों ने एक कमरे को खाल रखा था और उसी रास्ते से उस कोठी को लगातार प्रयोग में ला रहे थे।

जब मैं विमल के साथ दोपहर को उस कोठी पर पहुचा तो वहा मदनगोपाल के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे जिनमे एक केशवदेव गुप्ता था। मैंने अपना परिचय बिहार के पृथ्वीसिंह जी के नाम से दिया और उनको अपनी यात्रा का कारण बताया। यह निश्चित हुआ कि सन्ध्या समय केशवदेव मुझे शिवचरण को रेलवे स्टेशन पर दिखा देगा। शर्मा प्रत्येक दिन सन्ध्या समय स्टेशन पर घूमने जाता था। उसी रात सभी सदस्यो को अजमेर से बाहर चला जाना था और विमल को दिल्ली लौटना था। उनके अजमेर छोड़ने के पश्चात् सुअवसर पाकर मुझे शर्मा को गोली मार देनी थी। मैंने अपना रिवाल्वर उसी कोठी की एक अलमारी मे सुरक्षित समझकर रख दिया।

केशवदेव को मुझे उसी कोठी पर शाम को छ बजे मिलना था। जब विमल और मैं निर्धारित समय पर कोठी पहुचे तो वहा केवल मदनगोपाल उपस्थित था। कोई आध घण्टे बाद केशव भी आ गया और साधारणतया बताया कि उसने बाजार मे सुना है कि पुलिस ने शिवचरण को पकड लिया है। केशव के माथे पर किसी प्रकार का भी चिन्ह न देखकर मेरा माथा ठनका और मुझे उस पर सन्देह हुआ। मैंने उससे कहा कि वह स्टेशन जाकर पक्का मालूम करके आए कि शिवचरण की गिरफ्तारी की सूचना मे कितनी सत्यता थी। जब वह चला गया तो मैंने विमल को उसके पीछे भेजा। थोड़ी ही देर बाद विमल लौटकर बोला कि केशव समीप ही एक चाय की दूकान पर बैठा चाय पी रहा है और वहीं मे वह लौट रहा है। मैंने मदनगोपाल को भी सतर्क कर दिया। विमल के आने के पाच मिनट बाद ही केशव ने लौटकर कहा कि *वह स्टेशन गया था और वहा उसने अपनी आखों से शिवचरण को पुलिस लौक-अप मे देखा।*

मैं तो सतर्क हो गया था। उसने साधारण स्वर मे कहा कि मेरा अजमेर आने का अभिप्राय तो अब सफल होगा नहीं क्यो न मैं एक-दो दिन ठहर कर अजमेर तथा पुष्कर की सैर कर लूं। मैंने केशव को दूसरे दिन उसी कोठी पर आठ बजे आने के लिए कहकर विदा किया। यह सब जान मैंने इस कारण

रचा कि मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि केशव ने शिवचरणलाल को मेरे आने और उसको मारने की योजना बता दी थी जिससे शर्मा ने पुलिस से मिल कर अपने को गिरफ्तार करवा लिया। मेरी यही धारणा थी कि केशव मुझे भी पकडवा देगा।

जब केशव चला गया तो उस समय लगभग सात बजे थे। अजमेर से दिल्ली के लिए आठ बजे गाडी चलती थी और मैं उस गाडी को पकडना चाहता था। मैंने मदनगोपाल से अलमारी मे से मेरा रिवाल्वर निकालने के लिए कहा। परन्तु केशव किसी अज्ञात समय उस अलमारी मे अपना ताला लगा गया था। हम तीनो ने मिलकर ताला तोडा और रिवाल्वर निकाल मैं और विमल सीधे कौल साहब के मकान पर पहुचे। गाडी स्टेशन पर खडी थी, किसी न किसी प्रकार अपना बिस्तरा बाध स्टेशन पहुँच टिकट ले गाडी मे सामान रखने वाले बर्थ पर लेट मुह ढक कर पड गए और अजमेर से गाडी चलने के एक घटे बाद नीचे उतरे। डर था कही केशव साहब स्टेशन ही घूमते-घूमते न आ जाए और हमे देख पुलिस को सूचना दे दे।

जब हम अपना बिस्तरा बाध रहे थे तो कौल साहब घर आ चुके थे। शायद वह हमारी अजमेर यात्रा का मतलब भी ताड गए थे। बोले कि शिवचरणलाल शर्मा गिरफ्तार हो गया है। उन्होने यह भी बताया कि ऐसा सुना गया है कि शर्मा को किसी व्यक्ति ने टेलीफोन पर खबरदार किया था कि उसका जीवन खतरे मे है। इसीलिए शर्मा ने पुलिस को टेलीफोन कर अपने को गिरफ्तार करवा लिया है।

दिल्ली लौटने पर मैंने अपनी अजमेर यात्रा का ब्यौरा पण्डित जी को सूचित कर दिया था और उनके केशव से सतर्क रहने के लिए भी लिख दिया था। परन्तु होनहार था कि मैं स्वय ही सतर्क न रह सका।

केशव मुझे १ दिसम्बर की शाम को तिलक पार्क की सभा मे अकस्मात् मिल गया। दोनो ने एक दूसरे को देखते ही पहचान लिया। परन्तु वह मुझे निगम न जानकर पृथ्वीसिंह (बिहार वाला) ही जानता था। वह सभा की समाप्ति से पहले ही मुझे अपने निवासस्थान पर ले गया जो रामनारायण बाजार की किसी गली में था। उसके पास उस मकान का सबसे ऊपर वाला कमरा था।

उसने मुझे पृथ्वीसिंह के नाम से सम्बोधित कर पहले तो कुछ गप हाकी और फिर कहा कि वह कानपुर मे एक मनी एक्शन करने वाला है। रुपया बहुत मिलेगा। पूर्ण प्रबन्ध हो गया है, परन्तु एक रिवाल्वर या पिस्तौल बिना

वह एक्शन को कार्य रूप नही दे सकता। पण्डित जी ने उससे वादा किया हुआ है कि वह उसको कानपुर लौटने पर अवश्य दे देंगे। पूछने पर बताया कि पंडित जी पिछले तीन महीनो से बरेली मे है और दो दिन पहले ही उनका पत्र उसके पास आया है जिसमे पण्डित जी ने लिखा है कि वह अभी कुछ और दिन कानपुर नही लौट सकेंगे। यह सब प्रत्यक्ष झूठ था। उसी प्रात मैं पण्डित जी के साथ था। पण्डित जी बरेली गए ही नही थे।

केशव ने मुझसे मेरे दिनचर्या का ब्यौरा पूछा तो मैं भूल कर बैठा। मैंने उससे कह दिया कि मै प्राय प्रत्येक दिन गयाप्रसाद लायब्रेरी मे अध्ययन करने जाता हू। उसने मुझसे उक्त लायब्रेरी मे ४ दिसम्बर को साढे ४ बजे मिलने का वादा किया।

मैं जब २ दिसम्बर को पण्डित जी से मिला तो मैंने केशव की सारी बातें उनको बता दी और साथ ही यह भी कह दिया कि मेरा अजमेर का जो उस पर सन्देह था वह अब दृढ हो गया है। पण्डित जी हसे। साथ ही मुझे एक रिवाल्वर और २० कारतूस दिये और कहा कि जब ४ दिसम्बर को मैं केशव से मिलू तो वे उसको दे दू। पण्डित जी ने अपने सदैव सरल स्वभाव की भाति केशव पर मेरे उसके विरुद्ध कहने पर भी विश्वास किया। वह तो धोखा खाकर भी विश्वास करना नही छोडते थे। कहते थे जिसने जान हथेली पर रखकर घर-बार और ऐशोआराम छोडकर दल का सदस्य बनना स्वीकार किया है उस पर अविश्वास करना उसके प्रति घोर अन्याय करना है, जुल्म करना है। यही विश्वास एक दिन उनकी मृत्यु का कारण बन सकता है और बना भी, पर ऐसा उनके ध्यान मे आ ही नही सकता था।

मैं ४ दिसम्बर को प्रत्येक दिन की भाति १० बजे गयाप्रसाद पुस्तकालय मे जा स्पेशल रूम मे दो पुस्तको का अध्ययन करने लगा। जाडा होते हुए भी मैंने अपना कोट खूटी पर टाग दिया। उसकी जेब मे रिवाल्वर तथा कारतूस पडे हुए थे। ठीक साढे ४ बजे शाम को केशव तो नही आया, परन्तु लगभग दो सौ सिपाहियो के साथ यू० पी० स्पेशल सी० आई० डी० के सुपरिण्टेण्डेण्ट, नाटबावर, कानपुर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, फील्ड, डी० एस० पी० ठाकुर बशेशरसिह और शम्भूनाथ, इन्स्पेक्टर टीकाराम आदि अवश्य आए और मुझे पढते हुए को पीछे से आकर पकड लिया और दोनो ओर कनपटियो पर रिवाल्वर लगा दिए। पकडने के शीघ्र ही पश्चात् जब नाटबावर ने मेरा नाम पूछा तो इससे पहले कि मैं उत्तर दू, ठाकुर बशेशरसिह बोला, 'सर, भवानी सिह।'

मैं हस दिया। नाटवावर ने कारण पूछा, मैंने कहा मेरा नाम एन० के० निगम है। वरोशरसिंह फिर बोला—No Sir, he is lying He is not Nigam He is Bhawani Singh (नहीं जनाब, यह भवानी सिंह ही है और झूठ बोल रहा है कि निगम है)। मैंने कहा, ठीक है मेरा नाम भवानी-सिंह लिख लीजिए। नाटवावर समझ गया और उसने मेरा ही नाम लिखा, भवानीसिंह का नहीं। सन्ध्या समय टाकुर मुझे कैण्टोनमैण्ट पुलिस स्टेशन मिलने आया और बोला कि पुलिस को और विशेषकर, उसको मेरे पकडने का बहुत दुख हुआ। उनको तो बताया गया था कि मैं भवानीसिंह, पृथ्वीसिंह के नाम से घूमता फिरता हू और भवानीसिंह को पकडने पर ५०० रुपये का इनाम घोषित था। उसने यह भी कहा कि केशवदेव गुप्ता को भी दुख है कि उसको अब ५०० रुपये नहीं मिलेंगे। मैं इन गुप्ता जी के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानते हुए भी अधिक लिखना नहीं चाहता।

मेरे पकडे जाने के पश्चात् पुलिस लाकअप मे पण्डित जी के मुझे दो सन्देश मिले। उनमें कोई विशेषता नहीं थी। हा, इतना मुझे अवश्य मालूम हो गया था कि पण्डित जी को मुझ पर इतना विश्वास था कि मेरे पकडे जाने के पश्चात् भी वह और वैशम्पायन डा० मुरारीलाल के मकान मे ही रहते रहे।

पण्डित जी और भगतसिंह

यह तो पहले ही मै लिख चुका हू कि पण्डित जी को भगतसिंह से प्रगाढ प्रेम था। उन्होने उसको बचाने की योजनाए बनाई, परन्तु कुछ न कुछ कारणोवश सभी असफल रही। भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव को लाहौर केस के स्पेशल ट्रिब्यूनल ने फासी का दण्ड सुना दिया। पण्डित जी को बहुत दुख हुआ। उन्होने सुरेन्द्र पाण्डे और यशपाल को फिर से बुलाया। यहा मैं इतना कह दू कि नवम्बर के महीने मे जब मैं पण्डित जी के साथ रहता था, एक दिन शाम को पण्डित जी, वैशम्पायन और मैं विक्रमाजीत पार्क मे बैठे हुए थे कि यशपाल एक धोती और कुर्ता पहने हुए वहा आकर उनसे मिला। उसने दुखित हृदय से कहा कि दल से निकाले जाने के पश्चात् उसकी दशा बहुत बिगड गई है। कई-कई बार भोजन भी नही मिलता। उसकी समझ मे नही आता कि वह क्या करे। वह अब पण्डित जी के पास क्षमा-याचना के लिए आया है। पण्डित जी ने उसकी राम-कहानी सुनी, दो-चार अपशब्द कहे और उसको ५० रुपये देकर कहा कि उनके पास उससे अधिक देने को नही है और वह उसकी शकल देखना नही चाहते। यशपाल रुपया लेकर चला गया था।

दिसम्बर मे मै पकडा गया तो वह वैशम्पायन और सुरेन्द्र पाण्डे को लेकर ही दल को सभालने मे लग गए। दिल्ली मे सुशीला दीदी थी, परन्तु उनसे वह अधिक काम नही ले सकते थे। शेष लगभग सभी मुख्य साथी पकडे जा चुके थे।

भगतसिंह आदि को फासी का दण्ड सुनाया गया तो पण्डित जी को एक काम तो मिल ही गया। वह था किसी न किसी प्रकार उनकी फासी के दण्ड को रद्द कराना। उन्होने वैशम्पायन, यशपाल और सुरेन्द्र पाण्डे को साथ लिया तथा इलाहाबाद और दिल्ली के चक्कर लगाने आरम्भ कर दिये।

यह वे दिन थे जब लार्ड इरविन और महात्मा गाधी मे आन्दोलन को समाप्त करने और किसी प्रकार के निर्णय पर पहुँचने के लिए वार्तालाप हो रहा था। गणेशशकर विद्यार्थी पण्डित जी का पूर्णतया साथ दे रहे थे औरप० बालकृष्ण शर्मा की सहानुभूति भी उनके साथ थी। वे इलाहाबाद पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिलने जाते थे और उन्ही के परामर्श से वे दिल्ली जाकर काग्रेस नेताओ से मिलते थे।

पडित जवाहरलाल नेहरू के कथनानुसार पण्डित जी उनसे दिल्ली मे एक बार मिले थे और उन्होने भगतसिंह को फासी का दड न देने का सुझाव रखा था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उनका सन्देश महात्मा गाधी तक पहुँचाने का वादा किया था। हो सकता है कि उस समय पण्डित जी ने नेहरू जी से कहा हो कि यदि भगतसिंह, राजगुरू तथा सुखदेव को फासी नही दी गई तो वह क्रान्तिकारी आन्दोलन (आतकवाद) बन्द कर देंगे, परन्तु मैं नेहरू जी के उस कथन से सहमत नही हू, जहा उन्होने लिखा है कि पण्डित जी ने उनसे कहा कि क्रान्तिकारी आन्दोलन उनकी एक भूल थी और अब वह उसमे विश्वास नही करते।

जवाहरलाल जी ने एक और बात भी लिखी है। वह यह कि क्रान्तिकारी फासिज्म मे विश्वास रखते थे। मेरा दल से सबध लगभग डेढ वर्ष रहा। मै उस समय मे दल के सभी विशिष्ट नेताओ के सम्पर्क मे रहा। मैंने इतिहास मे एम ए किया था और दिल्ली विश्वविद्यालय मे प्रथम ही नही आया था, उस समय तक का रिकार्ड भी तोडा था। हिन्दू कालेज मे भी मै इतिहास ही का लैक्चरर नियुक्त हुआ था। मैने एम ए मे सभी इज्म पढे थे। जिसमे फासिज्म भी था। मैं सभी इज्मो को भलीभाति समझता था। मैं दावे के साथ कह सकता हू कि दल का एक भी व्यक्ति फासिज्म मे विश्वास नही रखता था। वे तो उसके विरोधी थे। दल का नाम हिन्दुस्तान समाजवाद प्रजातन्त्र पार्टी उसके ध्येय का सूचक था।

असेम्बली मे बम फेंकने के पश्चात् और फिर अभियोग चलाय जाने पर भगतसिंह ने जितने भी जवाब दिय थे, वह नेहरू जी ने पढे ही होगे। क्या वह

फासिज्म के सूचक है या उनकी ओर थोडा-सा भी सकेत करते है ? यह मेरी बुद्धि से बाहर है कि जवाहरलाल नेहरू जैसे समझदार और सुलझे हुए व्यक्ति ने यह कैसे लिख दिया ?

मोतीलाल नेहरू और स्वय जवाहरलाल जी ने दल को कुछ रुपये से सहायता की थी, यदि वे क्रान्तिकारियो को फासिस्ट समझते तो क्या वे उनका धन या किसी और प्रकार की सहायता करते ? अवश्य वह किसी भ्रम के शिकार हो गये होगे ।

दूसरी बात है यशपाल के सम्बन्ध मे । उसने आजाद से अपने को बडा और समझदार पढा-लिखा व्यक्ति साबित करने के प्रयत्न मे सिंहावलोकन मे लिख मारा कि आज़ाद पण्डित नेहरू को दल के सम्बन्ध मे स्पष्टतया समझ नही पाये थे क्योकि वह अग्रेजी नही जानते थ इसलिये उसने (यशपाल ने) दूसरे दिन नेहरू जी से मिल कर उनको दल का स्पष्टीकरण कर दिया था । पण्डित जी ने तो अपनी पुस्तक मे केवल आज़ाद का ही वर्णन किया है, यशपाल का नही । सत्य ही तो किसी ने कहा है कि 'जिस जगल मे सिंह नही रहता वहा गीदडो का ही राज्य होता है' । मेरा यह कहने का अभिप्राय यशपाल के सम्बन्ध मे कोई बुराई नही करना है । आखिर दल से निकाल दिये जाने से पहले वह भी तो दल का एक सम्मानित व्यक्ति था और केन्द्रीय समिति का सदस्य भी । आजाद की मृत्यु के पश्चात् उसको आज़ाद की महानता को भुला कर अपना बडप्पन दिखाना शोभा नही देता । ठीक है, वह आज भारत के बडे और माने हुए लेखको मे से एक है । उसका सम्मान उसकी पुस्तकें जनता से कराती हैं । मुझे भी हर्ष होता है जब मेरे एक साथी की प्रशसा लोग करते है । जब वही मेरा सम्मानित साथी अपने एक आदरणीय साथी ही नही बल्कि नेता को जनता की दृष्टि मे गिरा कर स्वय को ऊचे पद पर बिठाने का प्रयत्न करता है तो मुझे और मेरे अन्य साथियो का दुखित होना स्वाभाविक ही है । यदि मैंने इस पुस्तक मे यशपाल के प्रति भूल से कोई अप-शब्द लिखे हो तो वे यशपाल पर किसी प्रकार का लाछन लगाने के लिए नही, उसको जनता की नज़रो मे गिराने के लिए नही बल्कि अपने दुखित हृदय के उद्गारो को जनता के सामने रखने के लिए और आजाद की सही तस्वीर को उसके उचित स्थान पर प्रस्थापित करने के लिये ही किया है ।

नेहरू जी ने पण्डित जी का सन्देश गाधी जी तक पहुँचा दिया । गाधी

जी ने लार्ड इरविन से भी कहा, परन्तु लार्ड इरविन ने हस्तक्षेप करने से इकार कर दिया।

इन्ही दिनो पण्डित जी ने निर्णय किया कि सुरेन्द्र पाण्डे और यशपाल रूस जाए और वहा से क्रान्तिकारी आन्दोलन की क्रियाए सीख कर आए। उन दोनो के लिए रुपया भी एकत्रित करना आरम्भ कर दिया। परन्तु भाग्य मे तो कुछ और ही लिखा था।

पंडित जी की मृत्यु और वीरभद्र तिवारी

अक्तूबर १९३० तक पण्डित जी रामचन्द्र मुसद्दी के साथ उनके आर्य-समाज वाले निवासस्थान पर रहते रहे। उस मास मे मुसद्दी काग्रेस आन्दोलन मे जेल गए और फतेगढ जेल भेज दिए गए। उन्ही दिनो वीरभद्र तिवारी भी किसी न किसी प्रकार काग्रेस आन्दोलन मे जेल चला गया। शायद पण्डित जी को शस्त्र नही देना चाहता था। हो सकता है उसे यह भी सन्देह हो गया हो कि पण्डित जी किसी भी समय उसको मार या मरवा देंगे। पण्डित जी ने उससे कच्छी वाले मनी एक्शन मे भाग लेने के लिए कहा था। पर एक दिन पहले ही वह जेल चला गया था। फतेहगढ जेल मे सी आई डी के अफसर उससे बराबर मिलने आते थे। श्री रामचन्द्र मुसद्दी के कथनानुसार नवम्बर की किसी ऐसी एक मुलाकात के पश्चात्, जो शायद नाटबाबर ने की थी, तिवारी ने मुसद्दी से कहा कि उसको पता चला है कि कैलाशपति पकडे जाने के बाद ही सुलतानी गवाह बन गया है और उसने वीरभद्र तिवारी का नाम भी लिया है। वीरभद्र ने मुसद्दी के द्वारा अपनी पत्नी को एक पत्र लिखा जिसमे उसने शम्भूनाथ डी एस पी सी आई डी को मिलने के लिए फतेहगढ बुलवाया। (यह पत्र मुसद्दी ने पढ लिया था। यह उन्ही का बयान है) । शम्भूनाथ आया, दोनो की भेंट हुई और कुछ दिनो पश्चात् तिवारी मलाका जेल से छोड दिया गया। यह सारी कहानी मैं श्री रामचन्द्र मुसद्दी को उनके अपने ही शब्दो मे लिख देना चाहता हू .

"जब मैं (मुसद्दी) फैजाबाद जेल मे था मेरे पास वीरभद्र भी इसी जेल मे था। अचानक एक दिन उनसे मिलने के लिए कोई बडा सी० आई० डी०

का अपराह आया जो शायद नाटबावर था। दो तीन दिन तक इस मुलाकात के बाद वीरभद्र परेशान से रहे। पूछने पर पता चला कि कैलाशपति सुलतानी गवाह (अप्रूवर) हो गया है और उसने वीरभद्र का नाम भी लिया है। वीरभद्र का भविष्य क्या होगा यही बात उनको परेशान कर रही थी। कुछ दिन बाद उसने मुझे एक कागज का टुकडा कुछ लिखकर इसलिए दिया कि मैं उसे किसी प्रकार मुलाकात के दरमियान मे (अपनी पत्नी के साथ) अपनी पत्नी द्वारा उनके घर उनकी पत्नी को पहुचवा दू। वीरभद्र पर कुछ सदेह होने से मैंने वह कागज पढा। उसमें उन्होने तीन-चार लाइनें अपनी पत्नी को लिखी थी "मेरी किताबें आले से हटा देना और शम्भू (शम्भूनाथ, डी एस पी. सी. आई. डी.) से कह देना मुझसे जरूर मिल लें।" इसके दो-तीन दिन बाद ही फिर उनको जेल के फाटक पर बुलाया गया और पता चला कि उनकी तबदीली हो गई है। वीरभद्र को फैजाबाद जेल से मलाका जेल ले जाया गया। उस जेल मे वैशम्पायन भी था। वैशम्पायन के कथनानुसार मलाका जेल मे भी सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर शम्भूनाथ वीरभद्र की पत्नी को लेकर वीरभद्र से मिला था। उसी के पश्चात् वीरभद्र तिवारी को जेल से छोड दिया गया था।"

(देखो इस पुस्तक के अन्त मे परिशिष्ट)

यह तबदीली मलाका जेल मे हुई थी जहा से तिवारी को छोड दिया गया था।

तिवारी का कैलाशपति के सुलतानी गवाह बनने के शीघ्र ही बाद जेल से छूटना पण्डित जी को सन्देहजनक लगा। वह तो आशा कर रहे थे कि तिवारी पकड लिया जाएगा। उन्होंने वैशम्पायन, पाण्डे, यशपाल आदि सभी को तिवारी की ओर से चेतावनी दे दी। परन्तु स्वय यही विश्वास करते रहे कि तिवारी उनको कभी धोखा नही देगा। परन्तु उनको अपनी मृत्यु से पहले एक और आघात लगना था। वह था वैशम्पायन की गिरफ्तारी। यह भी मैं श्री मुसद्दी के अपने ही शब्दो मे लिख रहा हूँ

"मैं जेल से छूट कर कलकत्ते गया और वहा से लौटकर १० फरवरी १९३१ को कानपुर आया। उसी रात अचानक वैशम्पायन घर आया और कहा कि मुझे सुबह ४ बजे उठा देना जिससे मैं तडके ही चला जाऊ, क्योंकि वीरभद्र आपसे मिलने जरूर आएगा और मै नही चाहता कि मेरा कानपुर आना उसे मालूम हो। वैशम्पायन सुबह ही चले गए और उसके कुछ देर बाद ही वीरभद्र आए। उस समय लगभग ६ बजे प्रात. काल का समय था। मैं सो रहा

था कि आकर वीरभद्र तिवारी ने पुकारा। जागकर मैंने पूछा कहो, क्या बात है। बोले आज रात को कोई मुझे पूछने या मिलने तो नही आया था। मैने कहा नही। फिर पूछा क्या कोई साथी तुम्हारे घर ठहरा है, यह जूते किस के रखे है। मैंने कहा कोई भी नही ठहरा है और यह जूते तो मेरे है। इस पर वीरभद्र कमरे के भीतर आए। सब ओर अच्छी तरह से देखा किन्तु उस कमरे मे तो कोई सो नही रहा था। देख-दाख कर लौट गए।

"वैशम्पायन का दोपहर का खाना मेरे भाई शिवशंकर के यहा था और हम सब दो-ढाई बजे तक गप लडाते रहे। हम लोगों के पूछने पर वैशम्पायन ने कहा कि पण्डित जी की हमसे मुलाकात शीघ्र ही होगी। उसी दिन शाम को सुना कि वैशम्पायन कुली बाजार मे पकडे गए। हो सकता है कि यदि वैशम्पायन न पकडे जाते तो पण्डित जी को हम लोगो के कलकत्ते से लौट आने की सूचना मिल जाती (उन दिनों पण्डित जी दिल्ली मे थे) और वह कानपुर आ जाते तो शायद इतिहास कुछ और होता।"

उधर पण्डित जी को मालूम हो गया कि गाधी जी ने लार्ड इरविन के सामने भगतसिह आदि की मृत्यु दण्ड को रोकने का सुझाव अधिक बल के साथ नही रखा। उन्होने तो केवल यही कहा था कि समस्त देश मे भगतसिह के प्रति बहुत बडी सहानुभूति उत्पन्न हो गई है और यदि वह (महात्मा गाधी) उनके मृत्यु दण्ड को आजन्म कारावास मे नही बदलवा सके तो सम्भव है कि कराची कांग्रेस, जो २६ मार्च को होने वाली थी, उनके विरुद्ध चली जाए और गाधी-इरविन समझौते को ठुकरा दे। उस पर लार्ड इरविन ने उत्तर दिया था कि वह कानून द्वारा किये गये निर्णय मे हस्तक्षेप नही करेगा परन्तु इतना प्रबन्ध अवश्य कर देगा कि उन तीनो को फासी कांग्रेस के अधिवेशन से पहले हो जाय। इस पर महात्मा गाधी चुप हो गये थे।

पण्डित जी को गाधी जी के इस प्रकार के रवैये से अत्यन्त दुख पहुँचा। उन्होने २५ फरवरी को इलाहाबाद मे उन सब दल के सदस्यो की, जो इस समय बाहर थे, एक बैठक बुलाई। वे लोग २५ फरवरी को दिल्ली से कालका हावडा मेल से इलाहाबाद गये। गाडी जब कानपुर स्टेशन पर थी तो कुछ साथियों ने वीरभद्र को वहा देखा। उन्होंने पण्डित जी को सतर्क किया, परन्तु पण्डित जी ने यह कह कर टाल दिया कि वह तिवारी से डरने वाले नहीं है।

इलाहाबाद मे २६ फरवरी को बैठक हुई, उसमे क्या निश्चय हुआ यह तो मुझे पता नही चला किन्तु यशपाल और सुखदेव राज के कथनानुसार जो

उन्होंने मुझे १९३२ की जनवरी में बताया था, (उस समय मेरे ऊपर दिल्ली षड्यन्त्र अभियोग चल रहा था और मैं बीमार होने के कारण जमानत पर था) पण्डित जी ने उन दोनों को २७ फरवरी की सुबह आठ बजे अल्फ्रेड पार्क में बुलाया था। तीनों गया आठ बजे एकत्रित हुए और एक बड़े से वृक्ष के नीचे परामर्श करने लगे। इस वृक्ष से १५-२० गज दूर पार्क के अन्दर एक गड्ढा थी। गड्ढा के साथ ही एक नाला था जिसके द्वारा पार्क में पानी दिया जाता था। उस नाले के साथ पार्क की सीमा की दीवार थी और दीवार के बाहर एविन क्रिश्चियन कॉलेज को जाने वाली सड़क थी। यह सड़क कटड़े इलाहाबाद से आती थी। ये तीनों उसी सड़क की ओर मुख किये बैठे थे।

यहां मैं यह बता दूं कि जो सभा पण्डित जी ने २६ फरवरी को बुलाई थी वह कुछ परामर्शों के पश्चात् भंग हो गई थी। उस सभा में क्या निश्चय किया गया था यह तो मुझे ज्ञात नहीं हो सका, परन्तु इतना सुशीला दीदी से मालूम हुआ था कि अधिकतर सभी सदस्य अपने-अपने स्थानों को लौट गये थे केवल पण्डित जी, यशपाल और सुखदेव राज इलाहाबाद में रह गये थे। इन्हीं दोनों को पण्डित जी ने २७ फरवरी के प्रातःकाल अल्फ्रेड पार्क में बुलाया था।

लगभग साढ़े आठ बजे यशपाल ने पण्डित जी को बाहर वाली सड़क की ओर संकेत कर कहा, "भैया देखो, वीरभद्र तिवारी साइकिल पर जा रहा है।" पण्डित जी ने उसे देखा और कहा, "शायद उसकी मौत उसे यहां खींच लाई है।" पांच मिनट बाद यशपाल तो साइकिल पर बैठ चलता बना और पण्डित जी सुखदेव राज से बातें करने में व्यस्त हो गए।

यहां मैं फिर एक बार रामचन्द्र मुसद्दी की सहायता ले रहा हूं।

"२६ फरवरी की रात को मैं एक बारात में बनारस जाने के लिए कानपुर सेण्ट्रल स्टेशन पर अनेक बारातियों के साथ लेटा हुआ था। रात के लगभग ११ बजे मैंने देखा लोई लपेटे वीरभद्र तिवारी आ रहे हैं। उन दिनों दल के लोग उनसे सशंक रहते थे। पास आने पर मैंने पूछा तिवारी जी कहां चल रहे हैं। उत्तर मिला यहीं जरा काम है। मैंने कहा घर की बारात बनारस जा रही है, कोई खास काम न हो तो चलो। बारात हो आओ। उत्तर मिला, अच्छा चले चलेंगे। गाड़ी आई वह हमारे साथ ही डिब्बे में बैठ गए।

"इलाहाबाद स्टेशन पर गाड़ी रुकी। सतर्कता की दृष्टि से लेटे ही लेटे

मैं डिब्बे को देख रहा था। वीरभद्र चुपके से उठे। लोई से मुह लपेट लिया और किसी से एक शब्द कहे बिना वह चुपके से उतर गए। मुझे उनका इस प्रकार चला जाना अच्छा न लगा। २८ फरवरी को प्रात समाचार-पत्र हाथ मे आया। देखा बडे भैया अल्फ्रेड पार्क मे पुलिस से लडते हुए जूझ गए थे। दिल बैठ गया। कानपुर आने पर बात चली तो लोगो ने बताया वीरभद्र अस्वीकार करते है कि वह २७ फरवरी को इलाहाबाद मे थे। मैं सोचने लगा इस क्रूर सयोग को क्या कहू।"

मुझे अपने सूत्रो से भी पता चला था कि वीरभद्र २७ फरवरी की प्रात इलाहाबाद स्टेशन से अल्फ्रेड पार्क होता हुआ एक कटडे के मकान मे चला गया था जिसमे ठाकुर वशेशरसिंह डी एस पी सी आई डी रहता था। वहां उसको तिवारी ने पण्डित जी के इलाहाबाद मे उपस्थित होने की सूचना दी थी।

पण्डित जी की वीरगति

लगभग ९ बजे प्रात काल का समय था। पण्डित जी उसी वृक्ष के नीचे सुखदेव राज से बातचीत करने मे व्यस्त थे। देखा उनसे ३० गज की दूरी पर अन्दर वाली सडक पर एक कार आकर ठहरी। उसमे से दो अग्रेज और चार सिपाही नीचे उतरे। तीन भारतीयो के हाथो मे बन्दूकें थी। इन सभी ने ऊपर की ओर वृक्षो को देखना आरम्भ किया और धीरे-धीरे इधर-उधर फैलने लगे। पण्डित जी उनको एकटक देख रहे थे। सुखदेव राज से बोले, शायद शिकारी हैं। फिर उन्होंने देखा कि एक भारतीय जिसके पास बन्दूक नही थी, कार के पीछे बैठ गया। तीन भारतीय जिनके पास बन्दूकें थी, दो ओर उनको घेर कर वृक्षो की आड मे खडे हो गय। पण्डित जी सतर्क हो गय। यह सतर्कता और भी बढ गई जब उन्होंने उस अग्रेज को अपनी ओर बढता देखा। उसका दाया हाथ उसकी कोट की पाकिट मे था। पण्डित जी को आभास हो गया। उनका कोट पास ही पडा था जिसकी पाकिट मे उनका ३२ बोर का बेल्जियमाट पिस्तौल था। उन्होंने आहिस्ता स कोट को खीचा और पाकिट से पिस्तौल निकालना चाहा इतनी देर मे वह अग्रेज, जो नाटबावर था, केवल १० गज दूर रह गया था। उसने एकदम स जेब स हाथ निकाल पण्डित जी पर गोली चलाई और बाद म कहा, "तुम कौन हो ?" गोली पण्डित जी की जाघ मे लगी। परन्तु गोली लगने तक उन्होंने भी अपना पिस्तौल निकाल लिया था

और उनकी गोली भी ठीक उसी समय चली। नाटबावर भाग कर एक वृक्ष के पीछे छिप गया। उधर पण्डित जी भी खिसक कर उस वृक्ष के पीछे हो गये। परन्तु उन पर अब तीन ओर से गोलियां चल रही थी। उन्होंने तो अपना ध्येय उस अंग्रेज को ही बनाया हुआ था। तीव्र स्वर में कहते जाते थे "मैं हिन्दुस्तानी कुत्तो पर अपनी गोलियां नष्ट नही करूंगा।"

इस गडबड मे गुरुदेव राज गोली चलाता हुआ निकल भागा। गोलियों की ध्वनि सुन कर लोग बडी संख्या मे एकत्रित हो गये थे। पुलिस उनसे कहती, कह रही थी कि बहुत बडा और भयंकर डाकू है। गुरुदेव राज भीड मे घुस गया। वहा एक पुरुष की साइकिल छीनी, उसने विरोध किया, उसने अपना रिवाल्वर दिखाया वह भयभीत हो गया और साइकिल पर बैठ रफू चक्कर हो गया। यह साइकिल उसने उसके मालिक को बाद मे लौटा दी थी।

उधर पण्डित जी पर गोलियों की बौछार जारी थी, परन्तु पण्डित जी तो नाटबावर पर धडाधड गोलियां चला रहे थे। जब नाटबावर के पिस्तौल की मेगज़ीन खाली हो गई तो उसने अपने पाकिट मे से दूसरी मेगज़ीन निकालनी चाही। उसका कन्धा कुछ अंश मे वृक्ष की ओट से बाहर आ गया। पण्डित जी ने तड से उस पर गोली मार दी जो उसके कन्धे मे लगी। नाटबावर की फिर हिम्मत नही हुई कि वह अपनी पिस्तौल दोबारा भरे। उसे यह भी डर था कि कहीं पण्डित जी उसकी ओर से गोली न चलती देख उसके सामने आ उसको हाथ से ही न मार दें।

गोलियां चलते हुए १७-१८ मिनट हो चुके थे। ठाकुर विशेशर सिंह, जो कार के पीछे से गोली चला रहा था, नाले मे उतर, पण्डित जी की बाईं ओर नरसरी के पौदो के पीछे छिप उनपर गोली चलाने लगा। पण्डित जी ने गोली का केवल धुआं देखा और उसी धुए पर एक गोली छोड दी। गोली ठाकुर साहब के जबडे पर लगी और वह तो 'हाय मर गया, हाय मर गया' चीखता हुआ अपने टूटे हुए जबडे को अपने हाथ मे लिए हुए अपने कटडे वाले मकान मे लौट गया।

इधर २१ मिनट से गोलियां चल रही थी। पण्डित जी के पास की मेगजीन समाप्त हो गई थी। जब उन्होने देखा कि केवल एक ही गोली बची है, तो अपने दृढ निश्चय के अनुसार कि वह कभी जीते जी पुलिस के हाथो मे नही पडेंगे, उन्होने अपनी अन्तिम गोली अपनी कनपटी पर लगा, छोड दी और उनकी पवित्र तथा महान आत्मा अपने नाशवान शरीर के चोले को छोड कर

आज़ाद २७ फरवरी १९३१ को अल्फ्रेड पार्क मे पुलिस से लडते लडते अन्तिम गोली अपने मस्तक मे चलाने के पश्चात् ।

प्रकृति के अशो मे जा मिली। छोड गई केवल एक नाम, जिसको स्मरण करके माताए अपने पुत्रो को कहानिया सुनाएगी कि इस भारत देश मे सदैव ही ऐसे सुपुत्र पैदा होते रहे है जिनको अपने जीवन से अधिक अपने देश की स्वाधीनता से प्रेम था और जो उसकी स्वाधीनता के प्राप्त करने मे अपने सुख, अपने रिश्तेदार, अपने सगी-साथी, यहा तक कि अपने जीवन का बलिदान करते भी हिचकते नही थे।

पण्डित जी की ओर से गोलिया आनी बन्द हो गई थी। परन्तु पुलिस को भ्रम था कि पण्डित जी जान कर गोली नही चला रहे है। उनका भ्रम ठीक ही था। वे जानते थे कि उनकी गोलिया पण्डित जी को नही लगी थी। वे यह स्वप्न मे भी नही सोच सकते थे कि पण्डित जी अपनी गोली से ही वीर गति को प्राप्त हो सकते थे। पुलिस ने हथियारबन्द पुलिस का जत्था बुला भेजा था। इन लोगो ने पडितजी को लेटा देख सोचा, यह भी कोई चाल है। उन्होने उनके मृतक शरीर को अपनी अनगिनत गोलियो का निशाना बनाया, मानो शूटिंग की प्रेक्टिस कर रहे हो। फिर भी पण्डित जी लेटे ही रहे तो वे धीरे-धीरे उनकी ओर बढे। पण्डित जी को मरा हुआ देख उनके शव को उठाया। उनके शरीर के लगभग सभी भागो मे गोलिया लगी हुई थी परन्तु केवल एक ही गोली का निशान था जो उनकी कनपटी के पास था और वह उनकी गोलियो का नही था। शव को एक स्टेशन वैगन मे रख वहा से पोस्ट मारटम के लिये ले गये। जिस वृक्ष के पीछे नाटबाबर छिपा हुआ था उसमे १६३२ मे मैंने स्वय पण्डित जी की गोलियो के २५ निशान देखे थे। वे सभी पास-पास थे जिससे पण्डित जी की निशाने बाजी का अनुमान किया जा सकता है।

इधर जनता को भी ज्ञात हो चुका था कि पुलिस की मुठभेड डाकू से नहीं वीर चन्द्रशेखर आजाद से हो रही थी। वे अधिक सख्या मे वहा जमा हो गए। इससे आगे का हाल मैं प० शिवविनायक मिश्र के शब्दो मे उद्धृत कर रहा हू। मिश्र जी आजाद के सम्बन्धी थे और बनारस मे रहते थे। वही पर आजाद उनसे पहले छात्रावास के समय और फिर अज्ञातवास मे भी कभी-कभी मिलते रहते थे।

मिश्र जी ने लिखा है

"२७ फरवरी सन् १६३१ को जब श्री चन्द्रशेखर आजाद इलाहाबाद के अल्फ्रड पार्क मे पुलिस से एकाकी युद्ध करके शहीद हो गये तो रात को इलाहाबाद मे एक सज्जन, जो गाधी आश्रम के कार्यकर्ता थे, मेरे पास आये।

उनको स्व० कमला नेहरू जी ने मेरे पास भेजा था। वह रात को ११ बजे मेरे मकान पर आये और बताया कि आजाद शहीद हो गये और उनके शव को लेने के लिये मुझे इलाहाबाद बुलाया गया है। मै उन सज्जन के साथ सवेरे चार बजे छोटी लाइन की रेल गाडी से रवाना हुआ। जूही स्टेशन से मैंने एक तार मजिस्ट्रेट (इलाहाबाद) को दिया कि आजाद मेरा सम्बन्धी है, लाश डिस्ट्रॉय न की जाये। मै इलाहाबाद पहुच कर आनन्द भवन गया। कमला जी से पता चला कि लाश पोस्ट मारटम के लिये अस्पताल गई हुई है। अस्पताल पहुचने पर मैंने देखा कि लाश बन्द लारी मे पुलिस के पहरे मे ले जाई जा रही है। मैं सीधा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के बगले पर गया। उसने मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट के पास भेजा। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा लाश जला दी गई है। मैने उससे कहा कि अभी-अभी मैने लाश को लारी मे ले जाते हुए देखा है, इतनी जल्दी लाश कैसे जलाई जा सकती है। तब उसने दारागज पुलिस थाने के दारोगा को एक पत्र लिख कर दिया कि लाश त्रिवेणी पर जलाई जायगी, मुझे आजाद के सम्बन्धी के नाते उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने दी जाय।

बगले से बाहर निकलते ही पद्मकान्त मालवीय की कार दिखाई पडी। मैं उन्ही की गाडी मे उनके साथ दारागज थाने गया। दारोगा जी पत्र पढते ही हमारे साथ ही त्रिवेणी गये। वहा तो कुछ भी नही था। हम सुपरिण्टेण्डेण्ट के बगले की ओर मुडे ही थे कि साइकिल पर सवार एक व्यक्ति ने हमे बताया कि लाश रसूलाबाद गगा के किनारे गई है। जब हम रसूलाबाद पहुँचे तो चिता मे आग लग चुकी थी। हमने उनको सुपरिण्टेण्डेण्ट का पत्र दिखाया तब उन्होंने हमे अन्त्येष्टि क्रिया की इजाजत दे दी। पद्मकान्त जी और मैने आग बुझाई, शरीर की खाल जल गई थी। आजाद को मैं पहचान नही सका लेकिन थे वही क्योंकि फरार होने पर भी छुप छिप कर वह काशी आते थे और उन्हे देखने का मुझे एक बार मौका मिला था।

हमने दोबारा चिता मे आग लगाई तब तक पुरुषोत्तमदास टण्डन, श्रीमती कमला नेहरू आदि भी वहा पहुच गये थे। अस्थिया और कुछ राख मैं एक पोटली मे बाध अपने साथ ले आया। उस दिन शहर में पूर्ण हड़ताल थी, जनता मे अपूर्व उत्साह था। सायकाल काले कपडे मे बाध कर आजाद की अस्थियों का जलूस निकाला गया। श्री पुरुषोत्तमदास पार्क मे श्री मोहनलाल गौतम की अध्यक्षता मे सार्वजनिक सभा हुई। कुछ कांग्रेसी नही चाहते थे कि आजाद के लिये हड़ताल और सभा हो, इसलिए जलूस और सार्वजनिक सभा

दोनो का ही प्रवन्ध स्टूडेण्ट्स एसोसियेशन द्वारा हुआ था। सभा मे पुरुषोत्तम दास जी टण्डन, कमला नेहरू और मेरे भाषण हुए।

इस प्रकार यह महान् आत्मा भारतीय स्वाधीनता की लडाई मे अपने प्राणो की आहुति देकर जननी जन्मभूमि से उऋण हो गया।"

शिवविनायक मिश्र के कथन की पुष्टि करते हुए ही पद्मकान्त मालवीय ने लिखा :

"यह तो मुझे मिश्र जी से ज्ञात हो ही चुका था कि काग्रेस की अहिंसा नीति और आजाद के क्रान्तिकारी होने के नाम पर इस विषय मे काग्रेस के नेताओ ने उनकी किसी प्रकार की भी सहायता करने से साफ इन्कार कर दिया है। मैं मिश्र जी के साथ पहले कोतवाली पहुचा और फिर दारागज पुलिस थाने पर पुलिस ने जव सही पता न वताया तो हम रसूलावाद की ओर चल दिये जहा हमने एक लाश जलती देखी। हमने पुलिस से आजाद के जले हुए शव की भस्मी ली और अभ्युदय प्रेस लौट आए। रास्ते मे मिश्र जी ने याद दिलाई कि पूज्य मालवीय जी की इच्छा थी कि स्वतन्त्र भारतीय सेना के महासेनापति आज़ाद की शान के अनुरूप ही उनका अन्तिम सस्कार होना चाहिए। मैं सोच मे पड गया। यहा के काग्रेसी नेताओ के असहयोग की बात मिश्र जी सुना ही चुके थे। विद्यार्थी सघ के जो साथी साथ थे, प्रेस पहुचते ही उनके द्वारा मैंने एलान करवा दिया कि विद्यार्थी सघ की ओर से शहर मे पूरी हडताल होगी, शाम को ५ बजे भस्मी का जुलूस अभ्युदय प्रस से उठेगा और पुरुषोत्तमदास पार्क मे सभा होगी। देखते-देखते शहर म पूरी हडताल हो गई। ऐसी हडताल कम देखी गई थी। मिठाई, खोंचे और पान वालो तक ने अपना कारबार वन्द कर दिया। इक्के, तागे सब वन्द। इधर सशस्त्र पुलिस और घुडसवारो ने जलूस के सारे मार्ग को घेर लिया। हर दस कदम पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। मिलिटरी भी बुला ली गई और अफवाह फैल गई कि यदि जलूस निकला तो गाली चलाई जाएगी। मैं सीधा पुरुषोत्तमदास जी टडन के पास गया और उन्हे सारी परिस्थिति वतलाई। उन्होने मुझसे कहा कि जो कुछ मैंने प्रबन्ध किया है ठीक किया है और मुझे जलूस निकालना चाहिए और मैं स्वय भी आऊगा। उन्होंने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और कहा, "राजनीतिक मतभेद मैं समझ सकता हू पर मृत्यु के साथ ही सारे मतभेद समाप्त हो जाते है। आज़ाद विशुद्ध देशभक्त थे, क्या इस पर भी किसी को मतभेद हो सकता है? मेरी हिम्मत चौगुनी बढ गई। जलूस चल पडा। सभी लोग नगे सिर और नगे पैर

थे। आरम्भ मे आदमी थोडे थे। पर सडक पर आते ही देखा तो गलियो में आदमी पटे पडे थे और वह पुलिस की थोडी-सी हरकत होते ही जुलूस मे शामिल हो गये। यहा टण्डन जी भी सम्मिलित हो जलूस की अगुवाई करने लगे। पुरुषोत्तमदास पार्क पहुचते-पहुचते जलूस काफी बडा हो गया। पार्क मे भी जनता पहले से मौजूद थी।

सभा मे शचीन सान्याल की धर्मपत्नी ने अपने भाषण मे कहा, "खुदी राम बोस की भस्मी को लोगो ने तावीज मे रखकर अपने बच्चो को पहनाया था कि उनके बच्चे भी खुदीराम बोस की तरह बहादुर देश-भक्त बनें, मैं उसी भावना से भाई आजाद की राख की एक चुटकी लेने आई हूँ।" और फिर तो राख ऐसी लुटी कि बडी मुश्किल से उसका कुछ अश काशी ले जाने के लिए हम लोग बचा पाये थे शायद ! बहुत महान् थी यह सभा और इलाहाबाद ने पूज्य मालवीय जी की इच्छानुसार आजाद भारतीय सेना के महासेनापति की शानदार मृत्यु पर उनकी शान के अनुरूप ही उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की थी।

आज़ाद २७ फरवरी १९३१ में अल्फ्रेड पार्क में शमशान भूमि
में ले जाने से पहले

श्रद्धांजलि

यह था उस वीर का केवल दस वर्ष का जीवन। वे दस वर्ष जिसमे उन्होंने ब्रिटिश सरकार की जडो को हिलाकर रख दिया था। दस वर्ष—जिनमे एक दिन भी उन्होंने अपने लिए न जीकर देश के लिए अर्पण कर दिए थे। इन दस वर्षों मे ब्रिटिश सरकार ने लाखों रुपये व्यय कर दिए थे परन्तु पण्डित जी का पता नही लगा सकी थी। मुझे स्मरण है कि जब मैं कानपुर मे ४ दिसम्बर १९३० को पकड़ा गया था तो नाटबावर ने मुझसे कहा था कि सरकार मेरे नाम से लन्दन मे दो लाख रुपये बैंक मे जमा करा देगी और मुझे चुपके से लन्दन भी भिजवा देगी, यदि मैं केवल पण्डित जी के रहने का पता भर उसको बता दू।

पण्डित जी अपने कर्तव्य मे अत्यन्त कठोर थे। एक बार जब वह रामचन्द्र मुसद्दी के यहां ठहरे हुए थे और उनकी लडकी कुसुम जो शायद एक वर्ष की थी, पास ही पृथ्वी पर पडी खेल रही थी कि पण्डित जी का पिस्तौल अचानक छूट गया। कही पड़ोसियों को सन्देह न हो जाए, उन्होंने घर के किवाड़ों को जोर-जोर से बजाना आरम्भ कर दिया। कुछ समय बाद जब श्री भाभी ने पण्डित जी से पूछा कि यदि उनकी लड़की मर जाती तो क्या होता तो पण्डित जी ने सरलता से उत्तर दिया, "होता क्या, मैं तुम्हारा घर छोड़ कर चला जाता और लड़की को गंगा मे बहा दिया जाता।" अपने कर्तव्य पालन के लिए ही उन्होंने दलसान को मृत्यु दण्ड देने का निश्चय किया था। उन्होंने तो अपना जीवन ही कर्तव्य पालन मे अर्पण कर दिया था। यही कारण था कि एक के बाद एक

चोट खाते हुए भी और अपने घनिष्ट मित्रो तथा साथियो के मरने के तुरन्त बाद ही वह फिर दल के सगठन मे सलग्न हो जाते थे।

जहा एक ओर वह दृढ निश्चय और कर्तव्य पालन मे कठोर हृदय थे वहा दूसरी ओर वह स्वभाव मे अत्यन्त सरल तथा प्रेम करने वाले व्यक्ति भी थे। भासी मे मास्टर रुद्रनारायण को अपना भाई बना उनकी पत्नी को भावज माना और उनका इस भावज से जब कभी भगडा होता तो वह 'भाई' के पास जाते। भाई भी कह देते 'मैं देवर भौजाई के भगडो मे नही पडना चाहता, आपस मे ही निपट लो।' जब भगवानदास माहौर के यहा आना-जाना हुआ तो उनकी माता को इतना प्रेम किया कि वह भगवानदास से अधिक पण्डित जी को ही अपने बेटे का मान देती थी। कानपुर मे उन्होने श्रीमती भाभी (धर्मपत्नी रामचन्द्र मुसद्दी) और मुसद्दी जी से भी ऐसा ही प्रेम किया जैसे अपने सगे भाई-बहिन से करते हैं। मेरी अपनी बहिन से भी उन्होने सदा ऐसा ही व्यवहार रखा जैसा मैंने उसके साथ रखा था।

परिहास भी उनमे यथा मात्रा मे उपस्थित था। एक बार जब मैं होस्टल मे मोतीभारा से पीडित था और पण्डित जी मेरे साथ ही रहते थे, हिन्दू कालेज के एक प्रोफेसर मिश्रा मुझे देखने आए। वह वृद्ध अवस्था के मेरे पिता के समान थे। उन्होने आखें मूद मुझे सम्बोधित कर कहा, 'निगम, मेरी तुमसे सविनय प्रार्थना है कि इस रोग से स्वस्थ होने के पश्चात् तुम अवश्य विवाह कर लेना।' पण्डित जी इस दृश्य को देख रहे थे। उन्होने उसके पश्चात् अनेको बार मुझे प्रोफेसर मिश्रा की नकल कर सम्बोधित किया।

वह साधारण बातो के लिए मनुष्य का जीवन नही लेते थे। उनका लक्ष्य तो ब्रिटिश सरकार को भारत से निकालना था। जब भाँसी मे फरार अवस्था मे रहते थे तो उनका परिचय कुछ ठाकुरो और कुछ सरदारो से हो गया था जो भासी के समीप छोटी छोटी रियासतो (ताल्लुकेदारियो) मे रहते थे। वे लगभग सभी लोग पण्डित जी का असली परिचय जानते थे। जब उनमे से एक सरदार ने अपने राजा को मारने का प्रस्ताव रखा तो पण्डित जी ने इन्कार कर दिया। इसी प्रकार कानपुर के समीप मन्दिर की मूर्ति प्राप्त करने के लिए उन्होने हत्या करने से मना कर दिया था जबकि इस एक वध से उनको दल की सहायता के लिए पर्याप्त मात्रा मे रुपया मिल रहा था।

उनके चाल-चलन के सम्बन्ध मे तो मैं पुस्तक मे लिख ही चुका हू। उसकी पुष्टि एक और घटना से होती है जो उन्होने बताई थी। भासी के समीप

एक ताल्लुकेदारी (रियासत) मे वह एक सरदार के साथ रहते थे। यह सरदार भी उनके असली रूप से परिचित था। एक दिन पडित जी सरदार के साथ एक शूटिंग मे भाग लेने के लिए गए। वहा का राजा भी आया हुआ था। वह पडित जी की निशानेबाजी से बहुत प्रभावित हुआ और उनको अपने महल मे बुलाया। पण्डित जी वहा आने-जाने लगे। उस राजा को अप्राकृतिक क्रिया का व्यसन था। पण्डित जी हृष्ट-पुष्ट तो थे ही। राजा का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ और उसने पण्डित जी से अप्राकृतिक क्रिया करने के लिए कहा। पण्डित जी कुछ बहाना बना वहा से सरदार के घर लौटे और उसको सारी कहानी सुना राज्य से बाहर चले गए। जब सरदार ने उनको यह कहकर रोकना चाहा कि राजा उनको धन देगा तो उन्होने कहा, "हमारा दल आदर्शवादी क्रान्तिकारियो का दल है, देश भक्तो का दल है, आचारहीनो का नही है। यदि हमे पैसे नही मिलेंगे, तो हम लोग भूखे ही मर जाएगे और यदि पकडे गए तो फासी भले ही चढ जाएगे परन्तु ऐसा घृणित कार्य हम लोग कभी नही करेंगे।"

ऐसा भी नही था कि सभी सरदार उनके सच्चे साथी या सहानुभूतक थे। इन्ही सरदारो मे एक ऐसा था जिसके यहा पण्डित जी प्राय अपनी फरार अवस्था मे ठहरा करते थे। उसको जब यह ज्ञात हुआ कि पण्डित जी के पकडवाने से उसे दस हजार रुपए मिल जाएगे तो उसने अपने नौकर को साथ मिला षड्यन्त्र रचा। पण्डित जी को रात को ऊपर की मजिल के मकान मे सुला दिया और नौकर से यह कहकर कि पण्डित जी भागने न पाए, स्वय झासी पुलिस को बुलाने चला गया। नौकर से यह विश्वासघात नही देखा गया और उसने गुप्त रूप से पण्डित जी को खबरदार कर दिया। पण्डित जी रात को बारह बजे पिछली खिडकी से लगभग बीस गज की ऊचाई से पीछे खेत मे कूद, रातों रात जगल मे चलकर पन्द्रह मील दूर निकल गए। उनके पास न पैसे थे और न ही कपडे। केवल एक धोती और कमीज पहने हुए थे। हा उनका पिस्तौल उनकी धोती की गाठ मे अवश्य छिपा था। पन्द्रह मील चलने के पश्चात् जब वह सडक पर चल रहे थे और यह भी नही मालूम था कि वह सडक उनको किस ओर ले जा रही थी, उनको पीछे से एक बस के आने की ध्वनि आई। वह बस कुछ आगे जाकर रुक गई और उसमे से एक सिख व्यक्ति बाहर आ पण्डित जी की ओर चला। पण्डित जी सतर्क हो गए और उन्होने पिस्तौल हाथ मे ले लिया। सोचा यदि पुलिस का आदमी होगा तो उसे अपने बचाव मे गोली मार देंगे। परन्तु जब सरदार जी उनके समीप आए तो उन्होने

पण्डित जी को प्रणाम किया। पण्डित जी उनको पहचाने तो नहीं परन्तु प्रणाम का उत्तर प्रणाम से दिया। सरदार जी ने पण्डित जी से पूछा कि कहा जा रहे है इस जगल मे अकेले। बोले, 'कुछ पता नही।' सरदार जी ने कहा कि वह कानपुर जा रहे हैं और पण्डित जी को भी आग्रह कर अपने साथ ले लिया। यही नही सरदार जी के पास जितने उस समय पैसे थे वह उन्होने पण्डित जी को आग्रहपूर्वक दे दिए। यह सरदार जी पण्डित जी को भासी से जानते थे।

बेधडक होना तो पण्डित जी की आदत मे शामिल था। एक बार कानपुर मे जब वह बम के खोल बनाने की दो फैक्टरिया चलाने मे सफल हो गए तो उन्होने एक फैक्टरी का पता पुलिस को दे दिया। जब पुलिस वहा धावा मारने पहुची तो आप सडक पर खडे उनका तमाशा देखते रहे। कानपुर के थाने मे जाकर स्वय ही अपने पकडे जाने के इनाम का इश्तहार देख आये और दो पुलिस आफिसरो से मजाक भी कर आये।

श्रीप्रकाश जी ने उनके सम्बन्ध मे लिखा है, "यो तो सस्कृत छात्र समिति के सभी सदस्य प्रशसा के पात्र थे परन्तु कार्यक्षमता और निर्भीकता में चन्द्रशेखर आज़ाद का कोई समकक्ष नही था।"

पण्डित जी को गाना गाने या सुनने का शौक नही था। समय ही कहा था उनके पास इन बातो के लिए। कभी-कभी वह उर्दू के कुछ शेर कहा करते थे। उनमे से जो मैंने उनके मुह से सुने थे, वे यह थे—

"टूटी हुई बोतल है टूटा हुआ पैमाना।
सरकार तुझे दिखा देंगे ठाठ फकीराना॥"
"शहीदो की चिताओ पर पडेंगे खाक के ढेले।
वतन पर मिटने वाला का यही बाकी निशा होगा॥"
"दुश्मन की गोलियो का हम सामना करेंगे।
आज़ाद ही रहे हैं आज़ाद ही मरेंगे॥'

और सचमुच ही वह जब तक जीवित रहे आज़ाद रहे और आज़ाद ही मरे। मैं इस वीर की छोटी सी जीवनी को कवि श्यामपाल सिंह की आहुति से ही समाप्त करना चाहता हू। उन्होने १६५५ मे ठीक ही लिखा था—

"स्वतन्त्रता रण के रणनायक अमर रहेगा तेरा नाम।
नही जरूरत स्मारक की स्मारक है खुद तेरा नाम॥
स्वतन्त्र भारत नाम के आगे जुडा रहेगा तेरा नाम।
भारत का जन मन गण ही अब बना रहेगा तेरा धाम॥"

२१ वर्षीय आज़ाद मास्टर रुद्रनारायण के घर झांसी में

परिशिष्ट-१

आजाद की मृत्यु को लगभग ३८ वर्ष बीत गये। विश्वासघात ही उनकी मृत्यु का कारण था, इसमे तो किसी का भी मतभेद न था और न अब ही है। यह विश्वासघात किसने किया था, इसमे भी १६३१ या १६३२ मे लगभग सभी साथियो की नजरें वीरभद्र तिवारी पर ही थी। कानपुर में तो उस पर दो बार इसी कारण गोली भी चलाई गई थी परन्तु दोनो ही बार वह बच गया था।

कुछ समय पश्चात् दल तितर-बितर हो गया और कारागार से छूटने पर सभी सदस्य अपने-अपने धन्धो मे लग गये।

परन्तु तिवारी जो कानपुर छोड उरई चला गया था, जानता था कि विश्वासघात का कलक उसके ही माथे था। कई वर्ष बीत जाने के पश्चात् उसने श्री लल्लनप्रसाद व्यास द्वारा अपने बचाव मे एक लेख लिखवाया। यह तो असम्भव-सा ही प्रतीत होता है कि व्यास जी ने स्वयं ही यह लेख लिखा हो। इस लेख का उत्तर वैशम्पायन (अब स्वर्गीय) ने हिन्दुस्तान साप्ताहिक मे दिया।

शायद यह मामला यही समाप्त हो जाता परन्तु यशपाल ने वैशम्पायन के उत्तर मे धर्मयुग मे पाच लेख लिखे जिनमे लेखक ने तिवारी को निर्दोष ही ठहराने का प्रयत्न नही किया बल्कि अन्य नौ-दस साथियो के नाम लेकर उनपर सन्देह प्रकट किया। इन लेखों मे उसने अधिकतर पुलिस आफिसरो के बयानो पर ही विश्वास किया है।

यशपाल के इन लेखो का मेरा उत्तर 'दिनमान' ३ और १० दिसम्बर १९६७ मे छपा था। वह लेख इस परिशिष्ट मे दिया जा रहा है—केवल उतने ही भाग को जो इस पुस्तक मे अन्यत्र नही आया है।

यशपाल का मेरे लेख का उत्तर 'दिनमान' १४ अप्रैल १९६८ मे छपा था। उसने मेरे लेख मे उठाये गये १२ कारणों मे से एक का भी उत्तर न दे मेरे लेख को मिथ्या ठहरा दिया था। जो पाठक यशपाल के उत्तर को पढना चाहे वे 'दिनमान' को देख सकते है।

वीरभद्र तिवारी का भी लेख 'दिनमान' २१ अप्रैल १९६८ मे छपा था, वह मैं इस परिशिष्ट मे दे रहा हू। इससे पाठकगण को मालूम हो जायगा कि उनके कथन मे कितना तथ्य है। यह बात तो उसने मान ही ली है कि २७ फरवरी १९३१ को प्रात काल वह इलाहाबाद मे था और साइकिल पर भी गया था। परन्तु उसने यह नही लिखा कि कैलाशपति के बयानो के पश्चात्, जिसमे उसके सम्बन्ध मे भी लगभग पूर्ण उल्लेख था, वह पकडा क्यो नही गया, हालाकि शिवचरण पकडा जा चुका था। उसने यह भी नही लिखा कि जेल से छूटने के पश्चात् वह अज्ञात हो गया था।

इसी परिशिष्ट मे 'दिनमान' मे छपे कुछ पत्र भी दिये जा रहे है।

[चन्द्र शेखर आजाद की मृत्यु : जिम्मेदारी किसकी

अमर क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद इलाहाबाद,मे जिस गोलीकाण्ड मे मारे गये उसके पीछे किस व्यक्ति का विश्वासघात था, आजाद के भूतपूर्व सहयोगी इस सवाल को पुराना पड गया मानते थे। लेकिन उपन्यासकार यशपाल ने अपनी एक लेख माला द्वारा वीरभद्र तिवारी की सफाई की पैरवी करके इस मुर्दा सवाल को फिर जिला दिया। इतना ही नही, अपने मुवक्किल की सफाई मे उन्होने अपने कुछ उन सहकर्मियो को भी लाछित किया जिन्हे क्रान्तिकारी समाज सम्मान की दृष्टि से देखता रहा है। इन व्यक्तियो मे विश्वनाथ वैशम्पायन भी थे, जिनकी मृत्यु कुछ दिन पहले रायपुर मे हो गई। (देखिए 'दिनमान' १२ नवम्बर, १९६७)।

यशपाल की लेखमाला 'धर्मयुग' मे छपी थी और यह उचित था कि उनके अभियोगो का खण्डन या कि मामले से सम्बद्ध अन्य सामग्री का प्रकाशन वही हो, लेकिन आजाद, यशपाल और वैशम्पायन के सहयोगी नन्दकिशोर निगम (दिल्ली षड्यन्त्र केस) का लेख 'धर्मयुग' ने नही छापा। इससे पहले स्वय वैश-

म्पायन ने यशपाल के लेख के जवाब मे एक लेख धर्मयुग को भेजा था, लेकिन वह लौटा दिया गया, ऐसी सूचना हमे मिली है। क्योकि विश्वासघात का अभियोग न केवल कुछ दिवगत व्यक्तियो की प्रतिष्ठा से सम्बन्ध रखता है, बल्कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास के सदर्भ मे एक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक प्रश्न है, इसलिए श्री निगम का सस्मरणात्मक लेख एक दस्तावेज के रूप मे यहा प्रकाशित किया जा रहा है। —स०]

कुछ दिन हुए, मैने यशपाल लिखित चार लेख धर्मयुग मे पढे थे। इन लेखो का अभिप्राय इस बात को प्रमाणित करना था कि वीरभद्र तिवारी पण्डित जी की मृत्यु के लिए दोषी नही हैं। यशपाल ने तो कितने ही ऐसे नाम गिना दिये जिनमे से किसी को भी पण्डित जी की मृत्यु के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

यशपाल मेरे साथी रहे है। २२ दिसम्बर १९२९ से नवम्बर १९३० तक वह मेरे घर पर भी आते रहे हैं। उसके बाद भी हमारा परस्पर स्नेह बना हुआ है, यद्यपि कई वर्षों तक हम एक-दूसरे से मिल नही सके। कम-से-कम मेरे हृदय मे तो उनके लिए उतना ही प्रेम है जितना पहले था। मेरे पास यह सन्देह करने का भी कोई प्रमाण नही है कि उन्ह मेरे प्रति कोई नाराजगी है। अत जो कुछ मैं लिख रहा हू उसमे उनका विरोध करने की भावना लेशमात्र भी नही है। मेरा तो यही प्रयत्न है कि जिस प्रकार उन्होने अपना मत व्यक्त किया है, उसी प्रकार मैं उन तथ्यो को लोगो के सामने रख दू जो मुझे मालूम हैं।

जिन दिनो आजाद मेरे साथ रहते थे उन दिनो कभी-कभी वह अपने क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध मे अपने अनुभव और अपनी आपबीती सुनाया करते थे। तीन महीने के भीतर उन्होने अपनी लगभग सारी आपबीती सुना दी थी। इन सबको मैंने लिपिबद्ध कर लिया है, जो पुस्तकाकार आजाद की जीवनी के रूप मे शीघ्र ही पाठको के सामने आ जायगी। इस लेख मे तो मैं केवल वीरभद्र के सम्बन्ध मे ही लिखना चाहता हूँ। ऊपर जो कुछ लिखा गया वह केवल इस बात को प्रमाणित करने के लिए कि मेरा सम्बन्ध दल के लगभग सभी प्रमुख नेताओं से था, जिनमे यशपाल भी आते है और जो कुछ मैं लिख रहा हू वह केवल सुना-सुनाया या मनगढन्त नहीं है।

वीरभद्र को मैंने पहली बार २२ दिसम्बर, १९२९ को देखा था, जब वह हेम्प्टन के मेरे कमरे मे बुलाई गई बैठक मे भाग लेने के लिए कानपुर मे

आये थे। परन्तु उस समय उनसे मेरा परिचय नही हुआ था। दूसरा सम्पर्क पाच महीने बाद हुआ था, जब कानपुर से उन्होने मुझे सन्देश भेजा था कि इग्लैण्ड से नॉटबाबर नामक एक उच्च सी. आई डी. अधिकारी वाइसरॉय की ट्रेन पर बम फेंकने के मामले की जाच करने दिल्ली आये है और रोशनआरा रोड पर 'दिलकुशा' बगले मे ठहरे हुए हैं। तीसरी बार उनकी चर्चा अगस्त १९३० के अन्त मे कैलाशपति ने मुझसे की और बताया कि आज़ाद ने यशपाल को कानपुर बुलाया था और तिवारी पर यशपाल को गोली मार देने का भार सौंपा था, परन्तु तिवारी ने गोली मारने के बजाय यशपाल को सावधान कर दिया, जिससे यशपाल दिल्ली लौट आये और फिर लाहौर चले गये। कैलाशपति ने मुझे यह भी बताया कि आजाद अब यशपाल से इतने नाराज़ नही हैं जितने तिवारी से।

चौथी बार तिवारी के सम्बन्ध मे मुझे स्वय आजाद ने सितम्बर १९३० मे कानपुर मे बताया था। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे मुझसे कहा था कि तिवारी धोखा दे रहा है और वह दल का काम छोडकर दल के भेद सी. आई. डी. इस्पेक्टर शम्भूनाथ के द्वारा उच्च सी आई. डी. अधिकारियो तक पहुचा रहा है। जब मैंने उनसे कहा कि क्यो नही तिवारी को खत्म कर देते, तो उन्होने उत्तर दिया कि यू पी. के दल के सदस्यो और आश्रय तथा रुपये देने वालो के नाम व ठिकाने केवल तिवारी को मालूम है, जिन्हे वह बताता नही। मैं धीरे-धीरे नाम व ठिकाने मालूम कर रहा हू। जैसे ही मुझे पर्याप्त जानकारी हो जायगी, तिवारी को एक पल भी जीवित नही रहने दूंगा। परन्तु वह दिन कभी नही आया और दल के साथ तथा आज़ाद के विचारो से द्रोह करने वाला आज भी जीवित और खुशहाल है, समाज मे सम्मानित भी है। परन्तु जिस व्यक्ति ने १५ वर्ष की आयु से २३ वर्ष की आयु तक देश की स्वाधीनता की लडाई मे अपने को झोंक दिया और लडते-लडते अपना जीवन निछावर कर दिया, आज उसका नाम लेने वाला भी कोई नही है। मुझे तो आजाद का वह शेर याद आ जाता है जो वह बार-बार गुनगुनाया करते थे—

शहीदो की चिताओ पर पडेंगे खाक के ढेले।
वतन पर मिटने वालो का यही बाकी निशां होगा॥

मैं यशपाल के इस कथन से सहमत हू कि वीरभद्र तिवारी किसी भी 'ऐक्शन' मे भाग लेकर अपने को फँसाना नही चाहता था। यही कारण था कि जब आज़ाद ने उसे यशपाल को गोली मारने का आदेश दिया तो उसने

आदेश का पालन करने की बजाय यशपाल को आगाह करते हुए कानपुर से वापस लौटा दिया। आज़ाद ने जब-जब उसे किसी 'ऐक्शन' मे शामिल करना चाहा, उसने कोई-न-कोई बहाना बना दिया। पता नही ऐसा वह स्वतः की प्रेरणा से किया करता था या सी० आई० डी० इस्पैक्टर शम्भूनाथ के कहने पर। हो सकता है कि आरम्भ में उसने स्वतः की प्रेरणा से ही ऐसा किया हो, लेकिन जब कैलाशपति ने पुलिस को अपना बयान देना शुरू किया तो तिवारी को पुलिस का साथ देने मे ही अपनी भलाई दिखाई दी हो। वरना क्या कारण था कि कैलाशपति के बयानो के बाद भी वह फरार नही हुआ और पुलिस ने उसे गिरफ़्तार भी नही किया। उसके सामने लाहौर षड्यन्त्र केस के सुखदेव का उदाहरण था जिससे यही निष्कर्ष निकलता था कि यदि उसने पुलिस का साथ नही दिया तो या तो उसे फाँसी दे दी जायेगी या कैलाशपति का सामना करना पड़ेगा, जिसके लिए वह तैयार नही था।

मैं यशपाल के इस कथन को तर्कसगत नही समझता कि यदि वीरभद्र को रुपये ही का लालच था तो उसके सामने कितने ही ऐसे अवसर आये जब वह दल के किसी भी प्रमुख व्यक्ति को गिरफ़्तार करवा कर रुपया प्राप्त कर सकता था। मेरी तो यह धारणा है कि अक्तूबर के बाद जब उस ने सी० आई० डी० का साथ देना शुरू किया तो वह रुपये के लोभ से ऐसा नही करता था, बल्कि अपनी जान बचाने के लिए।

यशपाल इस बात से सहमत होगे कि जितने भी षड्यन्त्र अभियोगों मे दल के सदस्य सरकारी गवाह बने, वे पकडे जाने से पहले दल का काम ईमानदारी से करते थे। पकड़े जाने पर अपने गैर-कानूनी आचरणो के लिए दंडित किये जाने के भय से अथवा रुपये या स्त्री के लालच से वे सरकारी गवाह बन जाते थे। इस स्थिति मे पहुंचने से पहले भी यदि वे चाहते तो दल के कितने ही सदस्यों को पकडवा कर रुपया कमा सकते थे। लेकिन क्रान्तिकारी दल में ऐसा एक भी उदाहरण नही। यदि पकडे जाने से पहले दल के अन्य सदस्य पुलिस से स्वय नही मिलते थे और दल को धोखा नही देते थे तो वीरभद्र तिवारी से ही, जो दल मे एक सम्मानित स्थान रखता था, ऐसे आचरण की आशंका कैसे की जा सकती थी। यशपाल के कथनानुसार वीरभद्र को लोभ नहीं भय था। इससे आगे मैं यह भी कहना चाहूंगा कि जब कैलाशपति ने गिरफ़्तारी के बाद पुलिस को अपना बयान दिया, जिसमे वीरभद्र तिवारी के सम्बन्ध मे भी सब कुछ बता दिया गया था, तो वीरभद्र के सम्मुख दो ही रास्ते थे—या तो हम

लोगो के साथ वह भी दिल्ली षड्यन्त्र अभियोग मे अदालत के कटघरे मे खडा होता या अपनी जान बचाने के लिए पुलिस का साथ देता। आज़ाद के साथ उसका सम्बन्ध पुलिस को मालूम हो गया था। वह वीरभद्र को केवल एक ही शर्त पर छोड सकती थी कि वह आज़ाद को पहचनवा दे।

यशपाल ने अपने लेख मे कहा है कि ठाकुर बशेशर सिंह, डी० एस० पी०, सी० आई० डी० आजाद को पहचानता था और शायद उसी ने २७ फरवरी १९३१ को अल्फ्रेड पार्क मे आजाद को पहचाना था। मैं यशपाल को केवल इतना बता दू कि नवम्बर के अन्त मे एक दिन मैं, वैशम्पायन और आज़ाद कानपुर के रेलवे स्टेशन के न० १ प्लेटफार्म पर किसी काम से गये हुए थे। उसी समय ठाकुर बशेशर सिंह हमारे सामने आया। हमारे समीप से ही उसके गुजर जाने के पश्चात् आजाद ने कहा, "यह साला बशेशर सिंह है, जो मेरे पीछे पडा हुआ है। मै जब चाहू इसे मार सकता हू, लेकिन मैं इसे गोली से मार कर पैसे जाया नही करूँगा। मैं तो इसे किसी दिन छुरे से मारूँगा।" इससे स्पष्ट है कि बशेशर सिंह आजाद को नवम्बर के अन्त तक पहचानता नही था। फिर दो ही महीनो मे वह आजाद को कैसे पहचान गया ?

मैं यशपाल के इस कथन से भी सहमत नही हो सकता कि फरवरी १९३१ मे सनत ? ने पुलिस को बताया था कि सोहन एक बूढे व्यक्ति का नाम है। पुलिस को तो नवम्बर मे ही कैलाशपति ने दिल्ली मे बता दिया था कि सोहन यशपाल का नाम था। इसी प्रकार यशपाल ने कहा है कि वीरभद्र के विचार मे वैशम्पायन ने पुलिस को भगवतीचरण की मृत्यु का भेद बता दिया था। यशपाल ने वीरभद्र की राय बताते हुए यह भुला दिया कि जब वैशम्पायन जनवरी, १९३१ मे पकडा गया था, उस समय तक तो कैलाशपति पुलिस को लगभग दो सौ पृष्ठ का बयान दे चुका था और सभी भेद खुल चुका था। कैलाशपति के ये बयान आज भी तारीखवार उपलब्ध हैं और यशपाल उन बयानो को पढ कर सत्य जान सकते हैं। और यह भी तो सम्भव है कि वीरभद्र ने स्वय यह भेद पुलिस को बता दिया हो और नाम वैशम्पायन का लगा दिया हो। मैं तो यशपाल के लेख से चकित हो गया कि वीरभद्र तिवारी पर से सन्देह हटाने के लिए उन्होंने अनेक नाम गिना दिये कि अमुक-अमुक व्यक्तियो का नाम आज़ाद की मृत्यु के सम्बन्ध मे लिया जा रहा था। अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने एक रिटायर्ड पुलिस अफसर की राय का भी जिक्र कर दिया। 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त' वाला मामला सामने आ जाता है।

मेरे सम्बन्ध मे यशपाल का कथन अधिकतर ठीक नही है। मै उनकी जानकारी के लिए अपनी गिरफ्तारी की घटना यहा सक्षेप मे लिख रहा हू।

सालिग्राम शुक्ला की मृत्यु १ दिसम्बर, १९३० को हुई थी जिसका उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। कानपुर के नागरिको ने उसे श्रद्धाजलि देने के लिए उसी सन्ध्या को तिलक पार्क मे एक आम सभा की। मैं भी उसमे गया। वहा मुझे दल का एक सदस्य मिला जिससे सितम्बर मे अजमेर मे जान-पहचान हुई थी। वहा से वह मुझे अपने साथ रामनारायण बाज़ार के उस मकान मे ले गया जहा वह ठहरा हुआ था। उसने मुझसे फिर मिलने की इच्छा प्रकट की। मैंने उसे बताया कि मैं प्रतिदिन गयाप्रसाद लाइब्रेरी के स्पेशल रीडिंग रूम मे १० बजे से शाम के ५-साढे ५ बजे तक अध्ययन करता हू। उसने मुझसे ४ दिसम्बर को साय साढे ४ बजे उस पुस्तकालय मे मिलने का समय निश्चित किया। रोज की तरह उस दिन भी मैं १० बजे पुस्तकालय पहुचा और अध्ययन करने लगा। कमरा बन्द और गरम था। मैंने कमरे की खूटी पर अपना कोट टाग दिया जिसकी जेब मे एक रिवाल्वर था। ठीक साढे चार बजे पीछे से दो पुलिस अफसरो ने मुझे जकड लिया। मैं थोडा-सा हिला ही था कि एक अग्रेज पुलिस अफसर ने मेरे माथे से अपना रिवाल्वर सटा दिया और कहा कि यदि मैं ज़रा भी हिलूगा तो वह गोली मार देगा। जब मैं खडा किया गया तो मैंने देखा कि उस पुलिस दस्ते मे दो अग्रेज और पन्द्रह-सोलह भारतीय अफसर तथा अन्य पुलिस कर्मचारी थे। उन अग्रेज अफसरो मे एक तो नॉटबावर था और दूसरा कानपुर का पुलिस सुपरिटेंडेंट फील्ड। हिन्दुस्तानी अफसरो मे सी० आई० डी० का डी० एस० पी० ठाकुर बशेशर सिंह, इस्पैक्टर शम्भूनाथ और सी० आई० डी० का डिप्टी इस्पैक्टर टीकाराम थे। गिरफ्तार कर के वे लोग मुझे पुस्तकालय के बडे हॉल मे ले गये। नॉटबावर ने मेरा नाम पूछा। मैंने कहा, एन० के० 'निगम'। ठाकुर बशेशर सिंह बोला, 'नही साहब, यह झूठ बोल रहा है। इसका नाम भवानी सिंह है।' नॉटबावर ने फिर मुझसे मेरा नाम पूछा तो मैंने फिर सही-सही अपना नाम बता दिया। नॉटबावर ने ठाकुर की ओर कडी नजर से देखा। ठाकुर, बोला, 'आइ ऐम सॉरी सर।' (मुझे क्षमा कीजिए)।

वे लोग मुझे जब अपने साथ नीचे ले गय, तो मैंने देखा कि लगभग दो सौ पुलिस के सिपाहियो ने लाइब्रेरी को घेर रखा था। यह सतर्कता शायद १ दिसम्बर को शुक्ला से हुई मुठभेड के कारण की गयी थी। नॉटबावर और

फील्ड पुलिस सुपरिटेंडेंट मुझे अपनी कार मे कानपुर छावनी के पुलिस स्टेशन पर ले गये और वहा बन्द कर दिया। दो दिन लगातार नॉटबावर मेरे पास आकर दल के भेद लेने की कोशिश करता रहा, परन्तु असफल रहा। तीसरे दिन ठाकुर बशेशर सिंह आया और तब भवानी सिंह का भेद खुला।

ठाकुर ने आते ही मुझसे क्षमा मागी और बोला, "मिस्टर निगम, मुझे दुख है कि मैंने आपको पकडवाया मुझे तो मेरे मुखबिर ने यही बताया था कि तुम भवानी सिंह हो। अब मैं भी अपने अफसरो के सामने बुद्धू बना और मुखबिर को भी ५०० रु० नही मिले। आप समझ तो गये ही होगे कि वह मुखबिर कौन है।" उसका अभिप्राय उसी व्यक्ति से था जिसने मुझ से ४ दिसम्बर को शाम के साढे ४ बजे गयाप्रसाद पुस्तकालय मे मिलने को कहा था। मुझे सात दिन तक पुलिस हिरासत मे रखा गया। तीन आने रोज दोनो समय के खाने और चाय पानी के मिलते थे। जब पुलिस और सी० आई० डी० मुझ से कुछ भी मालूम करने मे असमर्थ रहे तो सातवें दिन—शनिवार —की रात को लगभग ८ बजे मुझे कानपुर जेल भेज दिया गया। वहा आते ही मेरे पाव मे बेडिया डाल दी गयी और एक कोठरी मे अकेले बन्द कर दिया गया। इस अवस्था मे मुझे वहा एक मास तक रखा गया। कोई अभियोग नही चलाया गया, जैसा कि यशपाल ने लिखा है। एक महीने बाद मुझे दिल्ली भेज दिया गया। स्टेशन से मुझे सीधे कचहरी ले जाया गया। कचहरी खुलने से पहले ही लगभग ६ बजे मैं बेहोश हो गया और जब तीन बजे के बाद मुझे होश आया तो मैंने अपने को जेल की एक कोठरी मे पाया।

दिल्ली षड्यन्त्र अभियोग लगभग दो वर्ष चला और अन्त मे फरवरी १६३३ के आरम्भ मे अभियोग वापस ले लिया गया और १६ फरवरी १६३३ को कानपुर मे आर्म्स ऐक्ट के अतर्गत मुझे दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गयी। मैंने अपनी सजा अधिकतर 'सी' क्लास मे, एक कालकोठरी मे काटी। पाव मे बेडिया पडी रहती थी। दो वर्ष बाद बनारस सेंट्रल जेल से रिहा होकर मैं दिल्ली चला आया।

मैंने अपने सम्बन्ध मे इसलिए लिखा, क्योकि यशपाल ने मेरी गिरफ्तारी तथा दिल्ली ले जाये जाने से पहले सजा मिलने की जो बात लिखी है वह असत्य है और गलत सूचनाओ के आधार पर लिखी गयी है। यह भी सम्भव है कि ३७ वर्ष पुरानी घटना का विवरण प्रस्तुत करते समय स्मृति विभ्रम हो गया हो। यही बात वैशम्पायन की गिरफ्तारी के सम्बन्ध मे भी कही

जा सकती है। परन्तु मुझे उनकी गिरफ्तारी के सम्बन्ध मे कुछ भी मालूम नहीं, इसलिए यशपाल के बयान का उत्तर तो वैशम्पायन ही दे सकते थे और उन्होंने दे भी दिया है जिसे मैं वैशम्पायन की मृत्यु के सम्बन्ध मे अपने लेख मे प्रस्तुत करूँगा। एक बात और। मैंने यशपाल का सिंहावलोकन पढ कर ऐसा महसूस किया है मानो १६२८-१६३० के क्रान्ति दल के सबसे बडे नेता यशपाल ही थे। आजाद भी उनके बाद ही आते थे। दल के साथ मेरा सम्पर्क स्थापित होने से पहले दल मे यशपाल की क्या स्थिति थी मैं नही कह सकता, परन्तु दिसम्बर १६२६ से लेकर ४ दिसम्बर १६३०—अपनी गिरफ्तारी—तक तो मैं ने यशपाल की स्थिति इसके विपरीत ही पायी थी। यशपाल को भी इस बात का ज्ञान है कि उस समय मेरा सम्पर्क दल के लगभग सभी उच्च नेताओ से था। वे मेरे होस्टल मे और बाद मे मेरे घर पर अक्सर आते रहते थे। यशपाल स्वय भी कितनी ही बार आये थे। मैं समझता हू कि यशपाल मेरे इस मत से सहमत होंगे कि उस समय तो दल के सबसे बडे नेता आजाद ही थे। उन्होंने ही यशपाल को मृत्यु-दड देने का निश्चय किया था। उन्होंने ही मृत्यु-दड वापस लेकर यशपाल को दल से निकाल दिया था और कम-से-कम ४ दिसम्बर १६३० तक तो उन्हे दल मे वापस नही लिया गया था। उसके पश्चात् क्या हुआ उससे मैं पूर्णतया अनभिज्ञ हू अत यशपाल के कथन को ही मैं सही मानता हू।

अब मै वे कारण बताऊँ जिनसे—कम-से-कम मुझे तो पूरा विश्वास है—कि आजाद की मृत्यु का कारण केवल वीरभद्र तिवारी का विश्वासघात ही था।

(१) वीरभद्र तिवारी कई वर्षों से दल का एक प्रमुख सदस्य, बल्कि नेता था। दल के लगभग सभी सदस्यों ने कभी-न-कभी किसी-न-किसी 'ऐक्शन' मे भाग लिया, परन्तु वीरभद्र तिवारी ने हमेशा बहाने बना कर अपने को सुरक्षित रखा।

(२) जब आजाद ने यशपाल को कानपुर बुलाया था तो यशपाल को गोली मारने का काम उन्होंने वीरभद्र को सौंपा था। लेकिन उसने दल के नेता आजाद के साथ विश्वासघात किया और भेद बता कर यशपाल को वापस दिल्ली लौटा दिया।

(३) सी० आई० डी० इन्सपेक्टर शम्भूनाथ वीरभद्र तिवारी के मकान के साथ वाले मकान मे ही रहता था और तिवारी तथा उसकी पत्नी के साथ काफी घनिष्ठ मित्रता थी।

(४) आजाद ने जब तिवारी से यू० पी० मे दल के सदस्यों के नाम व पते पूछे तो उसने किसी-न-किसी बहाने टाल दिया। यही नही, उसके पास दल के रिवाल्वर और पिस्तौल आदि जो थे उन्हे देने से भी उसने इन्कार कर दिया।

(५) कैलाशपति ने दिल्ली मे गिरफ्तार होने के बाद जब पुलिस को ब्योरेवार बयान देना शुरु किया तो नवम्बर के पहले सप्ताह मे उसने तिवारी के सम्बन्ध मे लगभग सब कुछ बता दिया था। फिर भी न तो पुलिस ने तिवारी को गिरफ्तार किया और न ही वह घर छोड कर भागा।

(६) अक्तूबर-नवम्बर मे आजाद के साथ 'ऐक्शन' मे भाग लेने से बचने के लिए जब तिवारी कांग्रेस आन्दोलन मे शरीक होकर फैजाबाद जेल चला गया तो शम्भूनाथ तिवारी उससे मिलने दो बार जेल मे गया था। यह घटना कैलाशपति के बयान देने के बाद की है।

(७) तिवारी ने रामचन्द्र मुसद्दी के द्वारा फैजाबाद जेल से एक गुप्त पत्र अपनी पत्नी को भिजवाया। उसके बाद ही नॉटबाबर फैजाबाद जेल मे आकर तिवारी से मिला। तत्पश्चात् तिवारी को जेल से रिहा कर दिया गया।

(८) वैशम्पायन की गिरफ्तारी के दिन प्रात तिवारी मुसद्दी के घर गया और पूछा कि, क्या वैशम्पायन यहा है? जाहिर है कि यदि वैशम्पायन वहा होता तो मुसद्दी के घर मे ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाता।

यह तो स्पष्ट ही है कि मुखबिरो की सहायता के बिना ही पुलिस अधिक-से-अधिक क्रान्तिकारियो को पकडना चाहती थी। उसने बहुत से ऐसे भी व्यक्तियो को पकडा था और उन पर षड्यन्त्र-अभियोग भी चलाया था जिनका दल के साथ हमदर्दी के सिवा और कोई सम्बन्ध नही था। दिल्ली षड्यन्त्र-अभियोग मे उसने मास्टर हरद्वारीलाल, भागीरथ, रुद्रदत्त आदि कई व्यक्तियो को शामिल किया था जिनके विरुद्ध षड्यन्त्र-अभियोग झूठा साबित हो जाने के बाद तथा कोई और अभियोग न लग सकने के कारण उन्हे छोड देना पडा। फिर पुलिस ने तिवारी को पकडा तक नही जिसके विरुद्ध गम्भीर आरोप थे। क्या यशपाल पुलिस की इस असमर्थता का उत्तर दे सकते है?

(९) रामचन्द्र मुसद्दी ने एक लेख मे लिखा है कि २६ फरवरी १९३१ को वह एक बारात मे कानपुर से बनारस जा रहे थे। उन्ही के डिब्बे मे तिवारी भी आ बैठा। मुसद्दी के पूछने पर भी उसने नही बताया कि वह कहा जा रहा था? प्रात काल गाडी इलाहाबाद पहुची और मुसद्दी ने चोरो की भाति तिवारी को गाडी से उतरते देखा। दो दिन पहले तिवारी ने आजाद को गाडी मे

कानपुर से इलाहाबाद आते देखा था। यह बात आजाद ने इलाहाबाद मे अपने कुछ साथियो को बताई थी जिनमे सुशीला दीदी भी थी।

(१०) मैं यशपाल को स्मरण दिलाना चाहता हू कि जनवरी १९३२ मे वह मेरे घर के सामने देवीप्रसाद शर्मा के यहा आये थे और उन्होंने स्वय मुझे आजाद की मृत्यु के बारे मे इस प्रकार बताया था, "फरवरी को दल की बैठक इलाहाबाद मे हुई थी जो उसी दिन समाप्त हो गई थी। दल के कुछ सदस्य इलाहाबाद से अपने-अपने घरो को चले गये थे। आजाद ने मुझे और सुखदेव को दूसरे दिन प्रात: आठ बजे अल्फ्रेड पार्क मे बुलाया था। वहा एक वृक्ष के नीचे हम तीनो मिले थे। अभी हम बातें कर ही रहे थे कि पार्क के बाहर यूइग क्रिश्चन कालेज की ओर जाने वाली सडक पर मैंने वीरभद्र तिवारी को साइकिल पर जाते देखा। मैंने तुरन्त आजाद का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते हुए कहा, 'भैया, देखो तिवारी जा रहा है।' आजाद ने देखा और कहा, 'जाने दो साले को।' जब मैंने भैया से कहा कि यहा से कही और चलें तो उन्होंने उत्तर दिया, 'मैं तिवारी से नही डरता, वह साला मुझे धोखा नही देगा।' मै तो पाच मिनट बाद वहा से चला गया। लेकिन मैं इलाहाबाद चौक मे ही था कि पार्क मे गोली चली और किसी क्रान्तिकारी के मारे जाने की सूचना मिली। मैं समझ गया कि भैया मारे गये।" यशपाल का दिया हुआ विवरण उस दिन से ही मेरे स्मृति-पटल पर अमिट रूप से अंकित हो गया है।

(११) आजाद की मृत्यु के पश्चात् यह खबर फैल गई थी कि तिवारी ही उनकी मृत्यु का कारण था। तिवारी पर दो बार गोली भी चलाई गई, परन्तु तिवारी ने अपनी सफाई मे कोई बयान नही दिया। दे भी कैसे सकता था, मन मे चोरी जो थी—और अब भी है।

(१२) तिवारी की आर्थिक अवस्था १९३० तक ठीक नहीं थी। आजाद की मृत्यु के पश्चात् वह खुशहाल कैसे हो गया?

एक और दस्तावेज : सुखदेवराज

२७ फरवरी सन् १९३१ को चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के बाद नॉटबावर ने पुलिस रिपोर्ट इस प्रकार दर्ज की (रिपोर्ट अंग्रेजी मे थी, यह हिन्दी अनुवाद है) ·

"आज ९॥ बजे सुबह ठाकुर विशेशर सिंह, डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑफ पुलिस सी आई डी का सवाद मिला कि उसने अल्फेड पार्क मे एक व्यक्ति

को देखा है, जिसका हुलिया फरार क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद से मिलता है। मैं अपनी गाडी मे दो सशस्त्र कांस्टेबल मोहम्मद जमाल और गोविन्दसिंह को लेकर वहा पहुचा जहा सवादिया विशेशर सिंह को छोड आया था। वहा बिशेशरसिंह नही मिला। सवादिया ने घास पर बैठे दो आदमियो की तरफ इशारा किया और बताया कि ठाकुर बिशेशर सिंह उन्ही का पीछा कर रहा था। मैं गाडी से उतरा और अपने दोनो साथियों के साथ उन आदमियो की तरफ बढा। १० गज के फासले पर से मैंने पूछा तुम लोग कौन हो ? इसके उत्तर मे दोनो ने पिस्तौल निकाल लिए और जल्दी-जल्दी गोलिया चलाने लगे। मेरे पास भी पिस्तौल तैयार थी और मोटे व्यक्ति को पिस्तौल निकालते देखकर मैंने भी गोली चलाई। शायद क्षणभर उन लोगो से पहले मेरी गोली उसकी जाघ मे लगी, जिससे वह उठ नही पा रहा था। एक गोली और मैने भी चलाई, जो उसके शरीर पर लगी। उसका साथी फुर्ती से उठ खडा हुआ और अपनी पिस्तौल की सारी गोलिया चलाकर भाग गया। मेरे दोनो साथियो ने मोटे व्यक्ति पर गोलिया चलाना शुरू कर दिया था। मैं अपनी पिस्तौल मे से मैग्ज़ीन निकाल रहा था, ताकि और गोलिया भर सकू। इसी बीच मोटे आदमी की एक गोली मेरी बायी बाह मे लगी और मेरी मैग्ज़ीन हाथ से गिर पडी। तब मैंने १० गज दूर एक पेड की आड ले ली। *मोटे व्यक्ति ने भी शीघ्र ही एक दूसरे पेड की आड सरक कर ले ली। दोनो कांस्टेबल, जो मेरे साथ थे, खाई मे कूद गये। चन्द मिनटो बाद ठाकुर बिशेशरसिंह ने झाडी के पीछे से ५०-६० गज सरकते हुए जाकर मोटे व्यक्ति पर गोली चला दी। मोटे आदमी ने भी उत्तर मे गोलिया चलाई, जो बिशेशरसिंह के मुह पर लगी।*

"मैं पिस्तौल मे और गोलिया भर नही पा रहा था, क्योकि मोटा व्यक्ति पेड के पीछे से मेरे ऊपर लगातार गोलिया चला रहा था। आखिर वह पीठ के बल गिर गया। मैं नही समझा कि उसे अभी कुछ हुआ, या पहले की गोलियो के कारण मर गया। इस समय तक बहुत-से लोग जमा हो गये थे। इसी समय एक आदमी, जिसे मैं नही पहिचानता था, एक भरी बदूक लेकर मेरे पास आया। उसे मैंने कहा कि मोटे व्यक्ति की टागो पर बदूक चलाओ, क्योकि मुझे निश्चय नही था कि वह मर गया है। उसके बाद मैंने जाकर देखा कि वह व्यक्ति मर गया था। उसका साथी भाग चुका था। मैं नही जानता कि उसको कोई गोली लगी थी या नही।"

उक्त रिपोर्ट मे से मोटे अक्षरो वाला हिस्सा यशपाल ने निकाल दिया है।

नॉटवावर की उक्त रिपोर्ट से यह बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि दोनो व्यक्तियों ने नॉटबाबर को देखकर पिस्तौलें निकाल ली थी।

दोनो व्यक्तियो ने जल्दी-जल्दी गोलिया चलाना शुरू कर दिया था।

आज़ाद और उसके साथी को गोली चलाता देखकर नॉटबाबर ने पहली गोली चलाई। नॉटबाबर की पहली गोली आज़ाद की जाघ मे लगी, क्योकि वह उठ नही पा रहा था। आजाद की गोली लगने से नॉटबाबर की मैंग्जीन गिर गई। मैग्ज़ीन जब हाथ से छूटकर गिरी, नॉटबाबर पेड की आड मे भागा। उसी वक्त आज़ाद सरक्ते हुए दूसरे पेड की आड मे हो गया। उसका साथी फुर्ती से उठ खडा हुआ और पिस्तौल की सारी गोलिया चलाकर भाग गया। नॉटबाबर और उसके साथी आज़ाद और उसके साथी पर गोली चलाते रहे। नॉटबाबर के साथियो ने खाई मे छुपने के लिए छलाग लगा दी। चन्द मिनटो के बाद एक झाडी के पीछे मे आकर आज़ाद के ऊपर विशेशरसिंह ने गोली चलाई। आजाद ने उसके उत्तर मे गोली चलाई, जो विशेशरसिंह के मुह पर लगी। नॉटबाबर को निश्चय नही था कि आज़ाद के साथी को गोली लगी थी या नही। उसका साथी गायब हो चुका था। पुलिस और क्रान्तिकारियो का मुकाबला तब तक होता रहा जब तक दोनो की पिस्तौलो मे गोलिया शेष थी। दोनो तरफ पिस्तौलो मे गोलिया समाप्त होने पर ही लडाई रुकी। लडाई रुकते ही दोनो पार्टिया छिपने का स्थान ढूंढने लगी। नॉटबाबर पेड के पीछे छिप गया, उसके साथी खाई मे जा कूदे। क्रान्तिकारी उस पेड की आड मे हो गये जिसके नीचे वे बैठे थे। आजाद इतने जख्मी हो चुके थे कि उनका भाग पाना सम्भव नही था, क्योकि तीन गोलिया लग चुकी थी।

ऐसी स्थिति मे आज़ाद ने स्वय ही आग्रह किया कि मैं (सुखदेव राज) भाग जाऊ, मेरे पास तीन गोलिया जेब मे थी। यदि और भर सकने का समय भी होता तो भी गोलिया काफी न होने के कारण लडाई जारी रखना नामुम-किन था।

यशपाल ने अपने लेखो मे मेरा भाग जाना एक कायरतापूर्ण बात कही है, यह बात सिर्फ व्यक्तिगत द्वेप की भावना से लिखी है।

एक वर्ष बाद भाई यशपाल पुलिस द्वारा इलाहाबाद मे एक मकान के अन्दर घिर गये थे। जब पुलिस के दल ने दरवाजा खटखटाया तो सावित्रीदेवी ने, जिसके यहा यशपाल ठहरा हुआ था, दरवाजा खोला। पुलिस ने सावित्री-देवी को बता दिया हम पुलिस के लोग हैं, दरवाजा खोलिये। सावित्रीदेवी ने

कुछ समय तक दरवाजा नही खोला और यशपाल को पर्याप्त अवसर दिया कि पुलिस के मुकाबिले की तैयारी कर ले। यशपाल के पास तीन पिस्तौलें और सत्रह गोलियां मिली। यशपाल ने अपने सस्मरणो मे लिखा है कि मैंने सावित्री देवी से कहा कि तुम दरवाजा खोल दो, 'आई विल फाइट।' जब सुपरिटेंडेण्ट पुलिस पिलिडच और सिपाही मकान के अन्दर घुसे यशपाल ने पीछे के अधेरे कमरे मे जाकर तीन गोली हवा मे चलायी। जब पुलिस आगे बढी तो यशपाल ने पिस्तौल पुलिस के सामने फेंक दी और हाथ उठाकर कहा—मैं निशस्त्र हूँ, मुझे गिरफ्तार कर लीजिये।

अपने गुरु जयचन्द विद्यालकार को और भाई परमानन्द को तथा दूसरे क्रान्तिकारियो को तथा वैशम्पायन को कायर कहने वाला यशपाल अब अपने गिरेबा मे मुह डालकर अपनी करतूत स्वय परखे।

दुर्गा भाभी का वक्तव्य

यशपाल के लेख के प्रकाशन के बाद पाचजन्य के सम्पादक श्री वचनेश जी ने दुर्गा भाभी से इण्टरव्यू लिया और सुखदेव राज पर लगाये गये आरोपो के सम्बन्ध मे जानकारी चाही। जो उत्तर उनको दुर्गा भाभी ने दिये थे बहुत स्पष्ट हैं। उन्होने कहा कि सुखदेव राज ने आजाद को गिरफ्तार कराने मे किसी प्रकार का सहयोग अग्रेजो को नही दिया तथा पार्टी के साथ किसी प्रकार का विश्वासघात नही किया। दुर्गा भाभी ने कहा कि वीरभद्र को अधिकाश लोग गद्दार मानते थे। चरित्र और पैसे की गडबडी के सम्बन्ध मे दुर्गा भाभी ने और भी स्पष्ट शब्दो मे कहा कि आजाद को और पार्टी को स्त्री और पैसे की बातो ने बहुत उलझन मे डाला। सुखदेव राज कभी भी इसका कारण नही बना, बल्कि 'दूसरे लोग ही इसका कारण रहे।'

जो चरित्र-हत्या का प्रयास यशपाल ने मेरे तथा वैशम्पायन के विरुद्ध किया है उस सम्बन्ध मे भाभी ने अत्यन्त खुली भाषा मे कहा है कि यशपाल के अलावा दूसरे साथियो के पास केवल कगाली है, साधनहीनता है, प्रेस की शक्ति नही है। दूसरे क्रान्तिकारियो को हीन सिद्ध करने की कोशिश अनुचित है। ऐसा कीचड उछालना अशोभनीय है।

यशपाल ने भाभी को इस कीचड मे घसीटने का जो प्रयास किया है उसका मुझे बहुत ही दुख है। भाई भगवतीचरण हमारे पूज्य थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन के एक वरिष्ठ नेता थे। वह हमारी श्रद्धा के पात्र है। यशपाल अपने द्वेष के सामने किसी छोटे बडे का लिहाज नही करता। आज ३८ वर्षों

के बाद गडे मुर्दे उखाड कर साथियो को गाली देने से जो स्थिति पैदा हुई है वह यशपाल के लिए शोचनीय है। बचे-खुचे सभी क्रातिकारी आज एक आवाज से यशपाल की निंदा कर रहे हैं।

[श्री सुखदेव राज ने यशपाल के एक और आरोप का भी उत्तर दिया है और जस्टिस भिडे के फैसले का अश भी अपने समर्थन मे उद्धृत किया है। क्योकि यशपाल का आरोप भी मुख्य प्रसग से सम्बन्ध नही रखता इसलिए इस वक्तव्य का वह अश भी छोड दिया गया है। —स०]

यशपाल की चरित्र-हत्या का सबसे पहला शिकार हुआ वीरभद्र तिवारी, जिसकी सफाई आज वह स्वय दे रहे हैं। यशपाल ने सिंहावलोकन मे लिखा है कि वीरभद्र खुफिया पुलिस इस्पेक्टर पण्डित शम्भूनाथ का केवल पडोसी ही नही था बल्कि ऐसी धारणा थी कि दोनो परिवारो मे काफी सौहार्द्र और सम्बन्ध भी था। आजाद के मन मे यह सदेह हो गया था कि वीरभद्र विश्वास-घाती है। आजाद ने तय कर लिया कि वीरभद्र तिवारी को गोली मार देनी होगी। उन्होने मुझसे कहा कि 'वीरभद्र बहुत ही धूर्त्त और तेज आदमी है। इस अवसर पर तुम मेरे साथ रहना।' मै तैयार हो गया। यह खयाल मुझे आया कि वीरभद्र ने बहुत आडे समय मेरी सहायता की है और मुझ पर उसका एहसान है, लेकिन दल के साथ वीरभद्र के उचित व्यवहार न करने के प्रमाण भी मौजूद थे। जो तीन प्रमाण मैंने ऊपर दिये हैं वे पुलिस के रिकॉर्ड और ऑल इण्डिया रिपोर्टर मे दर्ज हैं। दुर्गा भाभी का वक्तव्य मुझे स्वय बचनेश जी से प्राप्त हुआ। यशपाल साथियो से द्वेष के कारण चरित्र-हत्या करने मे कितने कमीनेपन पर उतर आया है, ये उसके उदाहरण है।

वक्तव्य : वीरभद्र तिवारी

गोपनीयता और सतर्कता के आवरण मे कार्य करने वाले विप्लववादियो के सगठन मे यह सदैव होता रहा है कि लोग एक-दूसरे से प्राय अपरिचित रहते है। केवल कुछ शीर्षस्थ नेता ही सबको जानते हैं। इससे कभी-कभी भ्रान्तिया उत्पन्न हो जाती है।

सन् १६३० की बात है—क्रान्तिकारी दल के क्रिया-कलाप के सम्बन्ध मे और कानपुर मे, जहा कि हम लोगो ने धीरे धीरे एक बडा और सुसगठित अड्डा बना लिया था, कोई "एक्शन" करने के सम्बन्ध मे थोडा-बहुत मतभेद हम लोगो के बीच चल ही रहा था। जहां कुछ साथी कही भी, कुछ भी करने को उतावले थे वहा मेरी राय मे कानपुर मे कुछ कार्यवाही करने का अर्थ

हमारे छिपकर रहने और बम-फैक्टरी चलाने की योजना का अन्त कर देना होना। इसके अतिरिक्त वैयक्तिक स्पर्धा भी न्यूनाधिक मात्रा मे हम लोगो के बीच चलती रहती। कभी वह उत्तर भारत और बगाल की तुलना का रूप ले लेती और कभी नई उम्र के नौजवानो तथा जवानी को गवा रहे प्रौढो के बीच उत्साह और कर्मठता की मात्रा का रूप ग्रहण कर लेती।

वाइसराय लॉर्ड इरविन की ट्रेन उडाने की योजना सफल हो चुकी थी। भाई भगवतीचरण की बम-परीक्षा मे मृत्यु तथा भगतसिंह के कारावास-मुक्ति दिलाने के प्रयत्न मे तत्सम्बन्धी यशपाल की कथित लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी एव निष्क्रियता आदि ने आजाद को क्षुब्ध कर दिया था। यशपाल पर उनके क्रोधानल को हवा दी कैलाशपति और धन्वन्तरि ने। क्योकि दल ने यशपाल को प्राण-दण्ड के लिए गोली मार देने का निर्णय लिया था इस प्रयोजन के लिए यशपाल को केन्द्रीय कमेटी की आवश्यक बैठक के लिए प्रात की ट्रेन से कानपुर पहुचने का सन्देश कैलाशपति द्वारा ही मिला था। लेकिन मैंने और सदगुरुदयाल अवस्थी ने यशपाल को आगाह कर दिया और यशपाल वापस लौट गये। कैलाशपति और दूसरे साथी यशपाल को दिल्ली मे देखकर स्तब्ध रह गये। यशपाल के कानपुर चले जाने का विश्वास हो जाने के बाद कैलाशपति ने साथियो को यशपाल के प्राण-दण्ड की बात बताकर उनके लौटने की आशा न करने को कह दिया था।

इधर कानपुर मे श्री गणेशशकर विद्यार्थी द्वारा राजनैतिक स्तर पर कुछ ऐसी बातें हो उठी थी जिनसे लगता था कि बैठकर गम्भीरता से विचार किया जाये। दल का काम चन्दे से चलता था। धन का स्रोत सूख-सा गया था। धनाभाव से दल पीडित था। डकैती के सिवाय और कुछ न सूझता था। कानपुर के एक कच्छी आढती को लूटकर धन लाने की योजना आजाद ने बनाई। मैंने और सद्गुरुदयाल अवस्थी ने असहमति व्यक्त की, क्योकि जरा-सी असावधानी से दल खतरे मे पड जाता और कानपुर जैसा क्रान्ति-केन्द्र विध्वस्त कर दिया जाता। इन्ही कारणो से धीरे-धीरे गलतफहमिया बढती गयी। सितम्बर सन् ३० मे मैं नमक-सत्याग्रह मे, कच्छी डकैती के पूर्व ही, जेल चला गया, जहा मुझे चार मास की सजा हुई। कानाफूसी हुई कि मैंने डकैती मे हिस्सा न लेने के कारण और इससे बचने के लिए अपनी गिरफ्तारी आयोजित की थी। इस बात से भी आजाद को मुझ पर खीझ हुई। मेरे प्रति उनका सन्देह और क्रोध बढा। मैं केन्द्रीय सचालक समिति का सदस्य, दल के मुख्यालय तथा बम-

फैक्टरी का संस्थापक और उत्तरप्रदेश में दल का संगठक था। मेरे जेल चले जाने के बाद श्री सुरेन्द्र पाण्डे को, जो लाहौर षड्यन्त्र केस में थे (और जिनके मित्र ब्रह्मदत्त मिश्र सरकारी गवाह बन गये थे), आजाद को फिर अपने साथ लेना पड़ा।

इस ग्रुप ने एक गप गढ़ी कि फैजाबाद जेल में नॉटबाबर मुझसे मिले, उनसे मैंने आजाद को पकड़वाने का वादा किया कि अवधि के पूर्व मुझे जेल से छोड़ा गया, फैजाबाद से इलाहाबाद मुझे इसीलिए भेजा गया कि मैं वहां आजाद को ढूंढू।

इसमें एक भी बात सच न थी। फैजाबाद जेल में मैंने चक्करबन्दी पर सत्याग्रह किया था, अत मुझे नेता करार देकर वहां से मलाका जेल भेज दिया गया था।

आजाद इन बातों को सुनकर बौखलाते, यह स्वाभाविक ही था और इन्हीं सब बातों ने मेरे विरुद्ध आजाद के मन में गांठ डाल दी थी।

जनवरी १९३१ का महीना था। मैं अपनी चार माह की सजा की पूरी अवधि काटकर छूटकर आया। जेल से निकलते ही मैंने प्रयास किया कि आजाद से मेरी भेंट हो जाय और उनकी शंका का निराकरण कर सकूं, क्योंकि जेल से आने पर मैंने पाया

(१) साथी, वरिष्ठ कांग्रेसी नेता, पार्टी के प्रश्रयदाता सभी सशंक।

(२) अवस्थी, मन्नीलाल पाण्डे, मालवीया, शिवचरण (मिकेनिक, बम फैक्टरी) ने मुझे यह स्थिति बताई।

(३) अरोड़ा जी विस्मित और व्यथित। मन्नीलाल पाण्डे द्वारा मैंने आजाद को भेंट के लिए पत्र भेजा, ताकि भ्रम दूर हो जाय।

(४) यशपाल से २६-२७ जनवरी को जब सहसा भेंट हुई तब उनसे भी मैंने यही आग्रह किया। यशपाल ने कहा, 'उनका (आजाद का) पारा गरम है। मेरे खिलाफ लोगों ने खूब भरा है, शान्ति होने पर मिलाऊंगा।'

(५) कैलाशपति मुखबिर होकर पुलिस को बयान दिये जा रहा था। पुलिस पंजाब की न जाने कब आ धमके और तलाशियां, गिरफ्तारियां शुरू हो जायें। इसके निवारणार्थ मैंने बम-फैक्टरी नष्ट की।

(६) मेरे इन सावधानी और सूझनापूर्वक किये गये कार्यों का भी अनर्थ लगाया गया। सी. आई डी. से बचना मेरा प्रथम उद्देश्य था। उधर साथी मेरी टोह में थे।

(७) मैंने सी० आई० डी० इस्पैक्टर प० शम्भूनाथ तथा टीकाराम के पीछे पार्टी के वैतनिक जासूस लगा रखे थे—सनक, चन्द्रमौलि, जगन्नाथ आदि सरकार ने मुझे खतरनाक समझ मेरे पीछे इन दो अफसरो को लगा रखा था।

इसी समय अकस्मात् ११ फरवरी को वैशम्पायन गिरफ्तार हो गये। सादे कपडो मे भूरेसिंह कास्टेबिल ने उन्हे शिवचरण के मकान पर साइकिल का ताला खोलने को झुकते ही दबोच लिया और वैशम्पायन का रिवाल्वर छीन लिया। शिवचरण ने बताया कि वैशम्पायन मुझे लेने आये थे, ताकि आजाद से मेरी भेंट हो सकती।

कैलाशपति के बयानो के आधार पर वैशम्पायन की पहली गिरफ्तारी उत्तरप्रदेश मे हुई थी। उसके बाद ही शिवचरण भी गिरफ्तार हो गया था, जो बम फैक्टरी का कार्य देखता था। उसे इलाहाबाद ले जाया गया, जहा उसने पुलिस को बहुत महत्त्वपूर्ण बयान दिया था। उसका बयान मि० कादरी मजिस्ट्रेट के समक्ष कलम-बद कराया गया।

माशीमा से मुझे पता चला था कि आजाद इलाहाबाद मे ही कही है। शिवचरण के पुलिस द्वारा इलाहाबाद ले जाने के कारण मेरा माथा ठनका और मैंने आजाद से मिलने की ठानी। उनसे प्रात छोड कर अन्यत्र जाने का अनुरोध करने के लिए मैं इलाहाबाद गया था।

२६-२७ जनवरी (मूल मे जनवरी ही लिखा गया है, लेखक का आशय कदाचित् फरवरी है।—स०) की रात फरारी अवस्था मे जब मैं कानपुर स्टेशन पर था तो प्लेटफार्म पर अचानक श्री रामचन्द्र मुसद्दी मिल गये। उनके भाई की बारात बनारस जा रही थी। उनके आग्रह पर उसमे मैं शामिल हो गया। २७ फरवरी को सवेरे करीब ७ बजे मै इलाहाबाद मे गाडी से उतर कर वही रुक गया। मैं अपना गतव्य और न मतव्य किसी को बता सकता था। पुराने काग्रेसी, काकोरी के मित्र श्री शीतलासहाय के घर गया। नहा धो कर उनकी साइकिल ले कर कटरा सडक से चला कि तभी करीब नौ-दस बजे दिन के सुना कि कोई क्रातिकारी मारा गया। यह और कोई नही आजाद ही थे। इससे साथी का विछोह ही नही हुआ, मुझ पर सन्देहो का स्तूप खडा हो गया। जहा मैं उन्हे बचाने चला था, वहा कलकित हो गया। कुछ लोग जो मुझे कलकित करते हैं उनसे मैं क्या कहू? यह जीवन का एक ऐसा क्रूर सयोग था कि इसके पहले मैं उनसे मिल सकू यह एल्फ्रेड पार्क मे पुलिस से जूझते हुये वीरगति पा गये। मुझे अपने ऊपर विश्वास था कि आजाद से भेंट होते ही उन्हे शमिल

कर लूगा। उनसे सदैव मुझे बडा शिष्ट सम्मान मिला था। इस प्रकार कुछ साथी जो मुझपर शक करते हैं उसे साथियो का मति-विभ्रम कहू या दैवी योग।

आजाद की शहादत के सम्बन्ध मे कुछ पत्रिकाओ मे हाल मे मुझसे सम्बद्ध कुछ लेख छपे है, जो केवल सुनी-सुनायी बातो पर आधारित हैं, अथवा कुछ लोगो ने पूर्वाग्रह जनित भावनाओ पर अनुमान के साक्ष्य खडे किये।

विप्लवकारियो के सम्बन्ध मे उस समय न ऐसे नियम ही थे न ऐसी न्यायिक परम्परा का ही जन्म हो पाया था जिसके आधार पर किसी को कोई कैफियत देने का अवसर दिया जाता। कुछ समय पूर्व यशपाल ऐसे ही एक सनक पर एकतरफा मृत्युदड के भागी बन चुके थे। कहना नही होगा कि मैंने केन्द्रीय समिति के सदस्यो के सामने भी और परोक्ष मे भी इस तरह के कार्य के औचित्य को हृदयगम नही किया।

किन्तु विधि का क्रूर विधान कि वही परिस्थिति मेरे सामने आयी, जब कि आजाद के शहीद होने के तीन-चार मास के भीतर कानपुर से मुझे धोखे से बुला कर एक स्थान पर गोली चलायी गयी और दूसरी बार मेरे ऊपर गोली चलायी गयी।

इतिहास की वास्तविकता पर निष्ठा रखने वाले एव सत्य की शोध करने वाले जिज्ञासुओ के समक्ष अपनी बात को केवल इस प्रकार ही सक्षिप्त रूप मे रखना चाहता हू कि वास्तविकता क्या थी। मेरी अपनी राय है कि सार्वजनिक वाद-विवाद करने का अवसर न तब था और न अब है। कुछ साथियो के रहस्यपूर्ण, सच्चाई से परे और नाटकीयता से भरे लेखो से केवल आत्मज्ञापन का ही प्रयोजन सिद्ध होता है। आज भी ७० वर्ष की आयु मे मुझमे इतना नैतिक साहस है कि किसी भी चुनौती को स्वीकार करने को तैयार हू। शहीद-शिरोमणि चन्द्रशेखर आजाद के बलिदान की स्वय मे इतनी महत्ता है कि उसमे भद्दे और मिलावटी रगो की कूची फेरने से कोई निखार आने को नही है। वह अमर हैं। आज तो अब अपनी ही सरकार है, उस समय के रिकॉर्ड, अधिकारी और क्रातिकारी भी मौजूद है, जिनसे वास्तविकता मालूम हो ही सकती है, सस्ती लोकप्रियता के अर्जनार्थ ऐसे साथियो का अनुसरण, गोपनीयता से प्रतिश्रुत, क्राति से प्रतिबद्ध मैं भी करूँ—यह न मेरे लिए शोभन है न शक्य। क्योकि मैं ऐसे साथियो की कोटि का प्रसिद्ध क्रातिकारी न था जो केवल आदेश ही पालन करते थे। मैं तो केवल केन्द्रीय समिति का सदस्य तथा प्रादेशिक सगठक था, जिस पर सम्पूर्ण दल के सचालन का भार था।

वीरभद्र तिवारी के पत्र से कुछ बातें तो स्पष्ट हो जाती हैं, परन्तु 'दिनमान' मे मैंने जो उसके विरुद्ध अनेक आरोप लगाये थे उनका उत्तर नही मिलता।

तिवारी ने यह तो मान लिया कि २७ फरवरी को वह प्रात काल इलाहाबाद मे था और वह साइकिल पर अल्फ्रेड पार्क के सामने कटडा गया था। उसने यह भी मान लिया कि जब आजाद कच्छी वाला मनी एक्शन करने वाले थे तो वह कांग्रेस सत्याग्रह मे जेल चला गया था और यह भी कि वह कानपुर मे कोई भी एक्शन न लेना चाहता था और न ही होने देता था। परन्तु उसने इस बात का कोई उत्तर नही दिया कि जिस समय कैलाशपति ने नवम्बर १९३० के आरम्भ से पुलिस को बयान देने आरम्भ कर दिये थे और तिवारी के विरुद्ध भी बहुत कुछ कह दिया था, उस समय तिवारी फैज़ाबाद जेल मे था, उसे क्यो नही गिरफ्तार किया गया।

कैलाशपति के बयानो के बाद नवम्बर मे विद्याभूषण बनारस मे पकडे जा चुके थे, मैं दिसम्बर मे कानपुर मे गिरफ्तार हो गया था और वैशम्पायन जनवरी मे कानपुर मे पकडा गया था। आश्चर्य तो यह है कि ब्रह्मदत्त भी कानपुर मे पकड गया था, परन्तु तिवारी, जिसको कानपुर की सारी पुलिस तथा सी० आई० डी० पहचानती थी, वह फिर भी सरेआम फिरता रहा।

मुझे दुख है कि तिवारी के पत्र से भ्रम व सन्देह दूर न होकर बढ ही जाता है।

परिशिष्ट-२

मैं इस परिशिष्ट मे पण्डित जी के सम्बन्ध मे कुछ साथियो के मत अथवा अनुभव सक्षेप मे उद्धृत कर रहा हू। सक्षेप मे इस कारण कि पुस्तक अन्यथा लम्बी हो जायगी।

कुछ पत्र जो दिनमान मे छपे थे, वे भी यहा दिये जा रहे है।

डा० भगवानदास माहौर

"एक समय था जब क्रान्तिकारियो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा जाता था उसका रुझान अहिंसा नीति के मिथ्यात्व, व्यर्थ आदर्शवादिता तथा अव्यावहारिकता को स्थापित करना होता था और उसमे असहयोग या सत्याग्रह के कारण चार-छै महीने आराम से जेल काटने की तुलना मे क्रान्तिकारियों की फाँसी और आजन्म काले पानी की यातनाओ को रखा जाता था। परन्तु आज हमे क्रान्तिकारियो के चरित्र मे उनके मृत्यु-जयी साहस, सच्ची दम्भरहित देश भक्ति और स्वातन्त्र्य के लिये हँसते-हँसते सर्वस्व बलिदान करने की तत्परता के ही दर्शन करने की आवश्यकता है जो हमे अपनी स्वतन्त्रता को समाजवादी प्रगति के लिये और वाह्य शत्रुओ से अपने देश की रक्षा करने के लिये आवश्यक भावनात्मक बल प्रदान करे।

"क्रान्तिकारी आन्दोलन के लक्ष्य और आदर्श की सही समझ के बिना महान् क्रान्तिकारी शहीद चन्द्रशेखर आजाद के कार्य को सही रूप मे समझा नहीं जा सकता।"

विश्वनाथ वैशम्पायन

"जो लोग आजाद के प्रति यह आरोप करते है कि उन्होने जीवन के अन्तिम दिनो मे अहिंसावाद को आजादी का सही रास्ता बताया, यह गलत है। ऐसे लोगों ने आजाद के प्रति ईमानदारी नही बरती। इन्ही दिनो उन्होने मुझसे कहा था कि देश तो एक न एक दिन आज़ाद होगा ही, उस दिन तक यदि तुम (वैशम्पायन) जीवित रहो, तो मेरे घर जाकर मेरी मा से मिल लेना। आज़ाद का क्रान्तिकारी दल के सिद्धान्तो और कार्यप्रणाली मे कभी अविश्वास नही हुआ। वह देखने मे साधारण थे पर उनका प्रत्येक कदम अनुकरणीय था। वह जन्मजात नेता थे। जीवन मे वह सबसे ज्यादा बल देते थे चारित्र्य पर। उनका कहना था कि जिसने इसे खोया उसका पतन निश्चित है। चरित्रहीन व्यक्ति से उन्हे घृणा थी। इसी को लकर उन्होने पार्टी भग कर दी थी। उनके मुह से कभी ईश्वर का नाम नही सुना और न कभी उन्होने उसकी दुहाई दी। अपने पौरुष पर उन्हे पूर्ण भरोसा था।

"आज़ाद की बातो मे कभी मायूसी नही होती थी और न ही उन्होने कभी क्रान्तिकारी दल के सिद्धान्तो पर अविश्वास दिखाया।

"पारिवारिक जीवन से आजाद का कोई विशेष लगाव नही था, पर जिस परिवार मे भी वह रहते थे उसी के लोग उनका अधिकार सहज ही मानते थे।

"उनकी वेश-भूषा सीधी-सादी होती थी, वही उनको पुलिस की आखो से बचाती थी। हा एक्शन के समय वह चूडीदार पायजामा और टोपी की जगह साफा बाधते थे।

"आज़ाद का नियम था कि जब तक साथी खा न लेते वह स्वय नही खाते थे। आर्थिक व्यवस्था तो बहुत ही दयनीय थी। कभी पकौडी और कभी चने एक-एक आने के खरीद कर पानी के साथ अपनी भूख को मिटा लिया करते थे। दिन मे दो बार भोजन तो एक नियामत होती थी, जो कभी-कभी मिलती थी। इसमे आज़ाद सबसे बाद मे खाते और परिस्थिति गम्भीर देखते तो कह देते कि भूख नही है।"

यशपाल

"आज़ाद को अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाकर साथियो को पढाने का बहुत शौक था। परन्तु उपन्यास या यौन विषय (Sex) सम्बन्धी पुस्तक देख कर

उन्हे बहुत चिढ उठती थी। ब्रह्मचर्य का एक बहुत ही रूढिवादी आदर्श उस समय तक आजाद के मष्तिष्क मे था। आजाद को नारी, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा से भी चिढ हो गई थी। वह कहते थे सिपाही को औरत से क्या मतलब !

"आजाद को अग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अग्रेज जब तक इस देश मे शासक के रूप मे रहेगे हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिये। समझौते का कोई अर्थ नही है। अग्रेज से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना बोरिया-बिस्तर सभाल कर यहा से चल दें।

"आजाद समाजवादी लक्ष्य को स्वीकार करते थे। वह लक्ष्य था, देश की ऐसी स्वतन्त्रता जिसमे देश के सभी व्यक्तियो को जीविका उपार्जन और जीवन के विकास का समान अवसर हो।

"अहिंसा सग्राम के बडे-से-बडे कमाण्डर भी इस बात से इन्कार नही कर सकते कि आजाद ने हमारी इस गिरी हुई हालत मे साहस, निर्भयता और बलिदान का जो आदर्श पेश किया है, वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन मे मार्ग दिखलाने वाले स्तम्भ की तरह खडा है।"

दुर्गा भाभी

(दुर्गा भाभी भगवतीचरण बोहरा की धर्म-पत्नी हैं। उनका आजाद से परिचय १९२९ के आरम्भ मे हुआ था और अन्तिम भेंट इलाहाबाद मे आजाद की मृत्यु से एक दिन पहले २६ फरवरी १९३१ को हुई थी।)

"मेरा जब सबसे पहला परिचय आजाद से हुआ तो मैंने उस दिन ही मानवता का ज्वलन्त प्रतीक पाया। निर्भय चेहरा, आखो मे अनोखा तेज और सरलता थी। व्यवहार सीधा-सादा और सौम्यतापूर्ण। उनके व्यक्तित्व मे एक गहरी छाप थी, प्रेरणा थी, उत्साह था और देश की स्वाधीनता पर सब कुछ निछावर कर देने का मूक आह्वान था। निकट आने पर मैंने उन्हे दो विरोधी शक्तियो का एक ही स्रोत समझा। उनमे कठोरता और कोमलता दोनो ही असीम थी। वह एक कलाकार थे जिनका अन्तर-बाहर सभी पवित्र था, जिसका हृदय अत्यन्त कोमल था, किन्तु कर्त्तव्य उतना ही कठोर। आजाद का व्यक्तित्व इतना ऊचा और शक्तिशाली था कि वह बिना किसी प्रपच के अपने अन्तिम दिन तक दल के एकमात्र नेता तथा सेनापति बने रहे। उनसे लोग डरते थे, प्यार करते थे और उनके बिना कोई दिन भी नहीं बिता सकता था।"

सुशीला मोहन (दीदी)

"एक बार हमारे एक साथी ने भैया (आजाद) से मजाक मे कह दिया, 'भैया आप तो मोटे होते जा रहे हैं। सरकार को आपकी कलाई के लिए शायद कोई विशेष हथकड़ी तैयार करानी पड़ेगी।' इतना कहना था कि भैया का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने तमक कर उत्तर दिया, "आजाद की कलाई में *हथकड़ी लगना अब बिल्कुल असम्भव है। एक बार सरकार लगा चुकी। अब तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे लेकिन जीवित रहते पुलिस आजाद को बन्दी नहीं बना सकती।"*

"मैं (दीदी) ने आजाद के सम्मुख प्रस्ताव रखा था कि लाहौर षड्यन्त्र अभियोग, जिसमे मैं फरार थी, यदि पुलिस को अपने को सौंप दू तो वकीलो की राय मे भगतसिंह का मुकदमा लम्बा किया जा सकता है। परन्तु आजाद ने मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। हा उन्होंने मुझे और दुर्गा भाभी को गाधी जी के पास यह सन्देश देकर अवश्य भेजा था कि यदि गाधी जी भगतसिंह और दत्त की फांसी को मन्सूख करा सकें और चलने वाले मुकदमो को *वापस करा सकें तो आजाद अपनी पार्टी सहित अपने को गांधी जी के हाथों में सौंप सकते हैं। परन्तु गाधी जी ने इन शर्तों को न तो उचित ही समझा और न सम्भव ही।*

"आज़ाद के व्यक्तित्व, त्याग, लगन और चरित्र ने हरएक व्यक्ति को प्रभावित किया जो उनके सम्पर्क मे एक बार भी आ गया। वह पक्के अनुशासन को मानने वाले थे। उनका चरित्र दहकते हुए अगारे के समान ज्योतिर्मय और शुभ्र ज्योत्सना के समान उज्ज्वल था। पार्टी मे उनका आदेश था कि कोई भी सदस्य स्त्री-जाति को बुरी नजर से नही देख सकता है वरना आजाद की पहली गोली का वही शिकार होगा।

"वह सोते-सोते साथियों को जगाकर योजनाओ पर विचार करने लगते थे। मैंने कभी उनसे शिकायत की तो वह मुझे ताना दिया करते थे कि यह नमक सत्याग्रह नही कि झण्डा उठाया, नारे लगाये और जेल चले गये। ये क्रान्तिकारियो की योजनाए हैं इन पर काफी विचार करना पडता है। जनता का पैसा वह धरोहर समझते थे। अपने ऊपर उन्होने कभी पाच पैसे भी नही खर्च किये। वह नही चाहते थे कि पार्टी का कोई भी सदस्य कभी सिनेमा, खेल-तमाशे देखे। क्योकि वह तो जनता की अमानत का दुरुपयोग है। भैया की बुद्धि बड़ी तीव्र थी जिसकी वजह से पुलिस गुप्तचर भी भय खाते थे।"

उन्हें बहुत चिढ उठती थी। ब्रह्मचर्य का एक बहुत ही रूढिवादी आदर्श उस समय तक आजाद के मस्तिष्क मे था। आजाद को नारी, प्रेम और सौन्दर्य की चर्चा मे भी चिढ हो गई थी। वह कहते थे सिपाही को औरत से क्या मतलब।

"आजाद को अंग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अंग्रेज जब तक इस देश मे शासक के रूप मे रहेगे हमारी उनमे गोली चलती ही रहनी चाहिये। समझौते का कोई अर्थ नही है। अंग्रेज से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना बोरिया-बिस्तर संभाल कर यहा से चल दें।

"आजाद समाजवादी लक्ष्य को स्वीकार करते थे। वह लक्ष्य था, देश की ऐसी स्वतन्त्रता जिसमे देश के सभी व्यक्तियो को जीविका उपार्जन और जीवन के विकास का समान अवसर हो।

"अहिंसा सग्राम के बडे-से-बडे कमाण्डर भी इस बात से इन्कार नही कर सकते कि आजाद ने हमारी इस गिरी हुई हालत मे साहस, निर्भयता और बलिदान का जो आदर्श पेश किया है, वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन म मार्ग दिखाने वाले स्तम्भ की तरह खडा है।"

दुर्गा भाभी

बनाने वाली क्रान्ति इनका परम लक्ष्य रही और उसकी प्राप्ति के लिये किये गए अमित बलिदान को भी इन्होंने मातृवेदी पर तुच्छ भेंट समझा।

"दुनिया वालों ने उन्हें सिर फिरे लोग, पागल, दीवाना, और क्या क्या नहीं पुकारा, किन्तु उन्होंने यह चिन्ता कभी नहीं की कि लोग उन्हें क्या कहते हैं। वे अपने मार्ग पर आस्था और अडिगता के साथ निरन्तर आगे-आगे चलते गये। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' के वे प्रतीक थे, फल की अभिलाषा, परिणाम की चिन्ता उन्हें कतई न थी।

"आज देश स्वाधीन है। उनका स्वप्न साकार हुआ है। कहीं हम उन्हें भूल न जायें। जिन हुतात्माओं का देश की स्वाधीनता में महान् योग है, उन्हें विस्मृत कर देना घोर कृतघ्नता होगी।"

आजाद की मृत्यु : कौन जिम्मेदार ? दिनमान ३ दिसम्बर '६७ : अध्यापक नन्दकिशोर निगम के लेख के लिए धन्यवाद।

—मन्मथनाथ गुप्त, नयी दिल्ली

नन्दकिशोर जी निगम ने जो कुछ भी प्रस्तुत किया है वह अपने-आप में संग्रहणीय तथा प्रशंसनीय है। लेकिन परोक्ष रूप से उनका आजाद को कुभाषिया सिद्ध करने का प्रयास मुझे काफी खटका है।

—सूरजप्रसाद मिश्र, जमशेदपुर

उपन्यासकार श्री यशपाल न जाने क्यों श्री वीरभद्र तिवारी को दोष-मुक्त स्वीकार करते हैं। शायद, तिवारी ने गोली मारने के बजाय 'आजाद' के उस आदेश की अवहेलना करके जो यशपाल को जीवनदान दिया था उसी के फलस्वरूप आज तक 'आजाद' के साथ दगा किसने की ?—एक रहस्य बना रह गया।

श्री निगम द्वारा दिये गये तर्कों में वास्तविकता की स्पष्ट झलक है, जब कि श्री यशपाल की लेख-माला में कई स्थानों पर भ्रम पैदा हो जाता है।

—भगवान द्विवेदी, लखनऊ

मुझे प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारियों के विषय में जानने की उत्सुकता रही है। 'सिंहावलोकन' इस क्षेत्र में मेरा प्रमुख आधार रहा है। लेकिन श्री नन्दकिशोर निगम का 'दिनमान' में दोनों किश्त पढ़ कर ऐसा लगा मानो 'सिंहावलोकन' लेखक के स्वयं का 'सिंहावलोकन' रहा है, क्रान्तिकारियों और उनके दल का नहीं।

'सिंहावलोकन' में लेखक शहीद भगतसिंह के व्यक्तित्व को पूरी तरह निगल चुका है, जबकि वह पूरे दल पर छाये हुए थे। यशपाल ने एक महान् क्रान्तिकारी के साथ अव्यवहारिकता की है। —नरेन्द्रसिंह बुन्देला, इन्दौर

आजाद की मृत्यु का जिम्मेदार कौन ? : प्रश्न केवल शहादत की जिम्मेदारी का नही था। प्रश्न था उस दुस्साहस का जिसने ३८ वर्ष पहले पार्टी को छिन्न-भिन्न करवाया और फिर साधनहीन क्रान्तिकारियो को लाछित करने का यत्न किया—केवल निजी द्वेष और अर्थ को सिद्ध करने के लिए। इस सिलसिले में शुरू से आखिर तक सब प्रकाशित सामग्री को ध्यान से पढने से नीचे दी हुई बातें ऊपर उठ आती है :

(१) यशपाल या तो स्मृति-विभ्रम के शिकार हैं या भ्रम फैलाना उनका मुख्य उद्देश्य ही है। भ्रमों का सिलसिला उनके 'दिनमान' के लेख तक भी चलता रहा है। (देखिए पृष्ठ आठ पर, जहा वह निगम के लेख के एक हिस्से का हवाला अपने को प्रमुख नेता जताने के लिए देते है।) यह हवाला वह तोड-मरोड कर ही इस्तेमाल करते है।

(२) सुखदेवराज पर यशपाल ने जो चार आरोप थोपे थे उनका खडन तो सुखदेवराज ने सुन्दर ढग से 'दिनमान' मे अपने लेख और उससे पहले अक्तूबर के पाचजन्य मे किया था। क्या यशपाल अपनी सच्चाई का दावा अब भी विश्वसनीय ही समझेंगे ?

(३) यशपाल युक्तिसगत होने का दावा करते हुए भी अपने लेख मे पुलिस अफसर प० शम्भूनाथ और एन० सी० मिश्र को उद्धृत करके आग्रह करते है कि उन्होने सब तरह से तसदीक कर के ही वैशम्पायन के सजा न पाने के बारे मे कहा था। पुराने पुलिस अफसर चाहे यशपाल के कितने ही विश्वसनीय मित्र रहे हो यशपाल का उनके मुह से अपने क्रान्तिकारी साथियो के विरुद्ध ऐसा भ्रम फैलाना शोभा नही देता।

(४) फिर एक प्रश्न यह उठता है कि यशपाल स्वय जब पकडे गये तब उन पर वायसराय की हत्या का प्रयास करने के अभियोग मे—जिसकी सजा मौत ही थी—क्यो नही केस चलाया गया ?

(५) गड़े मुर्दे वैशम्पायन ने नही उखाडे विवाद उठाया था वीरभद्र तिवारी ने, लल्लन प्रसाद व्यास द्वारा लेख लिखवा कर। अत: वैशम्पायन पर यशपाल का यह आरोप भी गलत है।

(६) निगम के लेख मे दिये गये दसवें कारण मे यशपाल की बात ही दोहरायी गयी थी। सम्भव है यह बात यशपाल ने निगम को १९३२ में यह जताने के लिए कही हो कि आजाद वीरभद्र पर अविश्वास नही करते थे। अपनी कथाओ में दूसरे के मुह से अपनी बात कहलवाने की महारत तो यशपाल ने साबित कर ही दी है।

क्योंकि 'दिनमान' ने इस प्रश्न को महत्त्व दिया था क्या मैं आशा कर सकता हूं कि उसके सम्पादक इस खोज को निष्कर्ष तक पहुचाने के लिए इन शब्दो को भी यथासम्भव स्थान देंगे ?

—बलदेवराज महेंद्रा, बम्बई